भाग तीसरा

कारवाँ

इन्सानकी बदबख़्ती अन्दाजसे बाहर है।
कम्बख़्त ख़ुदा होकर, बन्दा नज़र आता है॥

—आज़ाद अन्सारी

अयोध्याप्रसाद गोयलीय

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला--हिन्दी ग्रन्थाङ्क--२७

शेर-ओ-सुख़न

[मौजूदा दौरके ग़ज़लगो शायरे-आज़म]

भाग तीसरा

पुरातन शायरीका कायाकल्प और लोकोपयोगी
भावोंका समावेश, पवित्र प्रेमकी आराधना,
नारीका सम्मान और १९०१ से
१९५३ तककी घटनाओंका
ग़ज़लपर प्रभाव
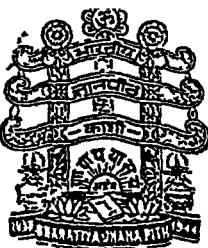
भारतीय ज्ञानपीठ काशी

बरहमन (पुजारी)

बरहमन नाल-ए-नाक़ूस मस्जिदतक भी पहुँचा दे ।
बुरा क्या है मुअ़ज्ज़न भी अगर बेदार हो जाये ।।

—हफीज़ जालन्धरी

साहू-जैन-कुल-दिवाकर

आयुष्मान् प्राणप्रिय अशोककुमार

और

सौभाग्यवती बहूरानी इन्दु-श्री को

अनेक शुभ भावनाओं एवं

शुभाशीर्वादोंके साथ

सस्नेह भेट

●

गोयलीय

विषय-सूची

	पृष्ठ
१—शाद अज़ीमाबादी	१२
परिचय	१२
शादके यहाँ रजो-ग़म	१२
उच्चभाव	१३
पाक इश्क़	१५
शराबका तसव्वुर	१६
उर्दू	२१
चन्द नैतिक शेर	२३
चुना हुआ कलाम	२४
तुलनात्मक अशआर	४५
२—अमरनाथ साहिर	५६
३—दत्तात्रिय कैफ़ी	६१
४—आज़ाद अन्सारी	६५
५—हसरत मोहानी	७१
परिचय	७१
हसरतकी शायरी	७५
हसरतका शायरीमें मर्त्तबा	८४
इश्ककी बुलन्दी	८८
रकीब	९२
चुना हुआ कलाम	९३
६—फ़ानी बदायूनी	१०८
परिचय	१०८
फ़ानी और ग़ालिब	१११
फ़ानी और मीर	११४
फ़ानीके मक्ते	१२२
कलाम	१२२
७—वहशत कलकतवी	१३०
८—यगाना चंगेज़ी	१३४
परिचय	१३४
सर्वधर्म समभाव	१३६
मज़हबी दीवानगी	१३७
ईश्वरका भरोसा	१३७
विलासी युवक	१३७
सर्व हित सुखाय	१३७
भीक न माँग	१३८
ख़ुदाके नामपर	१३९
कलाम	१४०
९—अमजद हैदराबादी	१५५
१०—आसी ग़ाज़ीपुरी	१६२

	पृष्ठ
११—असग़र गोण्डवी	१७१
परिचय	१७१
ईश्वरीय प्रेम	१७३
पवित्र प्रेम	१७७
रिन्दी	१७८
मन्दिर-मसजिद	१७८
शायराना नसीहतें	१७९
रोना-विसूरना पसन्द नही	१८१
चुना हुआ कलाम	१८१
१२—जिगर मुरादाबादी	१८७
परिचय	१८७
जिगरकी शायरी	१८८
प्रेयसीकी विवशता	१८८
गमेदौराँ	१८९
ईश्वरीय प्रेम	१९०
रोना-विसूरना इश्ककी तौहीन है	१९३
रुकावट	१९४
जिगरकी रिन्दी	१९४
कौमी-दर्द	१९५
चुना हुआ कलाम	१९५
१३—अलीअख़्तर अख़्तर	२०९
१४—रज़्म रदोलवी	२११
शब्द कोश	२१७
पारिभाषिक शब्द	२६०

ग़ज़ल-गो शायरे-आज़म

वर्त्तमान युगीन

देहलवी रंगके सर्वश्रेष्ठ शायर

१—शाद अज़ीमाबादी [ख्वाजा मीर 'दर्द' की शिष्य परम्परामे]
२—अमरनाथ 'साहिर'
३—दत्तात्रिय कैफ़ी
४—आज़ाद अन्सारी ['ग़ालिब' की शिष्य परम्परामे]
५—हसरत मोहानी ['मोमिन' की शिष्य परम्परामे]
६—फ़ानी बदायूनी
७—वहशत कलकतवी
८—यगाना चंगेज़ी ['शाद' अज़ीमाबादीके शिष्य]
९—अमजद हैदराबादी
१०—आसी ग़ाज़ीपुरी ['नासिख़' की शिष्य परम्परामे]
११—असग़र गोण्डवी
१२—जिगर मुरादाबादी ['असगर' गोण्डवीके शिष्य]
१३—अली अख़्तर 'अख़्तर'
१४—रज़्म रुदोलवी

ख़ान बहादुर नवाब सैयद अलीमुहम्मद 'शाद' १८४६ ई०मे उत्पन्न हुए और १९२७ ई०मे समाधि पाई। नियाज फतेहपुरीके शब्दोमे—"शाद व-लिहाज़ तगज्जुल बडे मर्तबेके शायर थे। उनके यहाँ मीर-ओ-दर्दका गुदाज, मोमिनकी नुक्तासजी, गालिबकी बुलन्द परवाजी और अमीर-ओ-दागकी सलासत सब एक ही वक्तमे ऐसी मिली-जुली नजर आती है कि अब जमाना मुश्किलसे ही कोई दूसरी नजीर पेश कर सकेगा।"[१]

'शाद' अज़ीमाबाद (पटना सिटी)के रहनेवाले थे। वे ख़्वाजा मीर 'दर्द'की शिष्यपरम्परामे हुए है। अतः आपके कलाममे भी वही असर नजर आता है। कही-कही तत्कालीन लखनवी रगकी भी झलक मारती है। आप मीर 'अनीस'से भी काफी प्रभावित नजर आते है।

शाद देहलवी-लखनऊ ज़बानके कायल नही थे। यही कारण है कि उनके कलाममे यत्र-तत्र मुहावरो और शब्दोका प्रयोग उक्त स्थानोकी परम्परासे भिन्न हुआ है।

'शाद' ख़्वाजा 'दर्द' स्कूलके स्नातक थे। इसीलिए हमने आपको

---

[१]इन्तकादियात, भाग २, पृ० १५६।

मजलिसे-देहलीमे उच्चासन दिया है। आपका कलाम भी ईश्वरीय-प्रेम, आध्यात्मिकता और दार्शनिकतासे ओत-प्रोत है। आपका रगे-शायरी ख्वाजा 'आतिश'[1]से बहुत कुछ समानता रखता है।

'आतिश' और 'शाद' दोनो ही अपने-अपने युगमे बहुत बुलन्द मर्तबेके शायर हुए है। दोनोके विचार, भाव और अन्दाज़े-बयान मिलते-जुलते है। दोनोकी अक्सर गजले हमतरही ऐसी है कि अगर उनमेंसे उपनाम निकाल दिये जाये तो कौन गजल किसकी है, निश्चयपूर्वक कहना आसान नही। जाहिरामे दोनो लखनवी, किन्तु भावो और विचारोकी दृष्टिसे अतरगमे देहलवी है। दोनो ही सूफियाना विचारके है।

इतनी समानता होते हुए भी दोनोका रंग भिन्न-भिन्न है। 'आतिश'के यहाँ व्यग और तीखापन इस गजबका है कि कुछ न पूछिये। उनके कलाममे गर्मी, और अन्दाजेबयानमे तडप इस बलाकी है कि कोई भी शायर उनका हमसर नजर नही आता। 'आतिश'के यहाँ दुःख-दर्द, पीडा-व्यथामे भी मुसकान भरी होती है। उनके गममे भी एक लहक और चहक होती है—

कफसमे भी है वही चहचहा गुलिस्तांका

शादके यहाँ रजो-गम, दर्दो-अलम, व्यथापूर्ण है। 'आतिश' इस विषयमे 'गालिब'के अधिक समीप है और 'शाद' 'मीर'के नजदीक है। 'आतिश' रजो-गममे बिलखते नही, यहाँ तक कि वे हृदयकी पीडाको व्यक्त करना भी अपनी शानके खिलाफ समझते है—

जौरो-जफायेयारसे[2] रंजो-महन[3] न हो।
दिलपर हुजूमेग़म हो, जबीपर शिकन न हो॥

---

[1]'आतिश' का परिचय एव कलाम 'शेरो सुखन' प्रथम भागमें दिया जा चुका है। [2]प्रेयमीके अत्याचार करनेपर; [3]दुखी और व्यथित न हो।

शाद अज़ीमाबादी

'शाद' व्यथा पीडाके आँसुओंको पीनेके बजाय उन्हे, प्रकट करना आवश्यक समझते है—

> ख़मोशीसे मुसीबत और भी सगीन होती है।
> तड़प ऐ दिल तडपनेसे ज़रा तसकीन होती है॥

> यूँ ही रातोको तडपेंगे, यूँ ही जाँ अपनी खोयेंगे।
> तेरी मर्ज़ी नहीं ऐ दर्देदिल! अच्छा! न सोयेंगे॥

मगर वे अन्य शायरोकी तरह सरे आम हाय-हाय करनेके पक्षपाती नही—

> तड़पना है तो जाओ जाके तड़पो 'शाद' ख़िलवतमें।
> बहुत दिनपर हम इतनी बात गुस्ताख़ाना कहते हैं॥

इन दोनोके कलाममे उल्लेखनीय विशेष अन्तर यह है कि 'आतिश'के यहाँ पतित भाव, हकीर विचार और बाजारी इश्क अधिकाश रूपमे पाया जाता है। लेकिन 'शाद'के कलाममे इतनी सजीदगी, बडप्पन, और सुथरापन पाया जाता है कि वे उर्दू-शायरोमे सर्वश्रेष्ठ नजर आते हैं।

उर्दूके सर्वश्रेष्ठ शायर 'मीर' भी अपना दामन इव्तज़ाल (कमीने-ज़लील विचारो)मे न बचाये रख सके। वकील किसीके "उनके दीवानमे लौंडे भरे पडे है" 'ग़ालिब' भी धौल-धप्पेपर उतारू हो जाते है—

> धौल-धप्पा उस सरापा नाज़का शेवा नहीं।
> हम ही कर बैठे थे 'ग़ालिब' पेश दस्ती एक दिन॥

और 'मोमिन'का तो माशूक ही हरजाई नही, स्वय भी हरजाई थे। हमेशा मृगनयनियो (गज़ालचश्मो)को फाँसते रहे—

आये गजालचश्म सदा मेरे दाममें।
सैयाद ही रहा मैं, गिरफ़्तार कम हुआ ॥

तात्पर्य यह कि प्राचीन और अर्वाचीन प्राय सभी शायरोके कलाममे यह दोष पाये जाते हैं। लेकिन 'शाद'का कलाम इन दोषोंसे मुक्त है। उनके यहाँ 'बोसा' (चुम्बन) जैसा बदनाम और हकीर शब्द भी इतनी वुलन्दीसे नज्म हुआ है कि अन्यत्र मिसाल नही मिलती।

बोसये-संगे-आस्ताँ[1] मिल न सका हज़ार हैफ।
आगे क़दम न बढ सका हिम्मते-सरफराज़का[2] ॥

उक्त शेरकी पवित्रता और मर्तबेको वही अनुभव कर सकता है, जिसने कभी सगे-आस्ताँके बोसा लेनेका प्रयत्न किया हो, परन्तु किसी कारण सफलता न मिली हो। राष्ट्रपिता वापूके शहीद किये जानेपर उनकी चिताकी राख लेनेके लिए लाखो नर-नारी लालायित थे। एक-दूसरेको धकेलकर बापूकी राखको मस्तकसे लगानेको कई लाख नर-नारी बढ रहे थे, परन्तु कितनोको सफलता मिली ? जो भी राख न पा सके, अपने भाग्यको कोस रहे थे। जब किसीकी ऐसी स्थिति हो, तभी 'शाद'के उक्त शेरकी महत्ता प्रकट हो सकती है। आस्ताने-यार या शहीदोकी समाधियोको बोसा देना 'शाद'की अछूती और उच्च भावना है—

शहीदाने-वफाकी ख़ाक, क्या अक्सीरसे कम है ?
न हाय आये कदम, बोसा तो ले जाकर मज़ारोंका ॥

यह बात 'गालिब' और 'आतिश'को कहाँ नसीब ? 'गालिब' तो स्वय ही अपने इस हकीर खयालसे भयभीत नजर आते हैं—

---

[1]माशूककी चौखटके पत्थरका चुम्बन; [2]अभिमानीके साहसका।

ले तो लूं सोतेमें उसके पाँवका बोसा मगर—
ऐसी बातोंसे वह काफिर बदगुमाँ हो जायगा ॥

यारके पाँवका बोसा लेना या जहाँ उसने पाँव रखे हो, उस आस्ताँका बोसा लेना जाहिरामे यकसाँ नजर आते हैं। मगर 'शाद'के शेरमे श्रद्धा, भक्ति और पवित्र-प्रेमकी झलक है, तो गालिबके यहाँ वासनाकी गन्ध। और 'आतिश' तो अपने इस शेरके प्रतिबिम्बमे सरीहन ऐय्याश मालूम होते हैं —

बोसेबाजीसे मेरी होती है ईजा उनको।
मुँह छुपाते हैं जो होते हैं मुहासे पैदा ॥

और एक 'शाद' हैं कि उनकी अभिलाषा अधिक-से-अधिक इतनी बढती है कि उनकी खाक यारके परिधानका बोसा ले सके तो अपनेको कृतकृत्य समझे—

बोसा लेनेका मेरी खाकको भी अरमाँ—ताब उठनेकी कहाँ ?
जामेजेबीका भला ! ऐ सनमेतंग कबा—कुछ तो दामनको झुका ॥

यही पवित्र और उच्च इश्ककी झाँकियाँ 'शाद'के कलाममे दृष्टिगोचर होती हैं। स्वय भी फर्माते हैं—

मेरा दीवाँ तो शीरब है जहाने-पाकबाजीका।
पढ़े कलमा जबाने-फ़ारिस इस बांगे-हिजाजीका ॥

गजल इतनी नाजुक और कोमल कला है कि तनिक-सी चूकसे वह आकाशसे पृथ्वीपर गिर पड़ती है। शब्दोके हेर-फेर और भावोके उतार-चढावसे इसमें पवित्र-से-पवित्र और पतित-से-पतित विचारोका प्रतिबिम्ब झलकता है। 'आतिश' जैसा बुलन्द मर्तबेका शायर जब ऐसे घटियल शेर कह सकता है— -

शबे-विसालमें खोले क़बाये-यारके बन्द।
कमरसे खींचके पटकेको हमने दे मारा॥

हाथ मलता हूँ जो मैं देखके सीनेका उभार।
कहते हैं "तोड़िये जिनको यह वोह नारंज नहीं॥"

जब 'आतिश' जैसे दरवेशका यह आलम हो, तब 'दाग़'का तो ज़िक्र ही क्या—

यह लुत्फ़ है कि दुपट्टा उड़ा रही है हवा।
छुपा रहे हैं जो सीना कमर नही छुपती[1]॥

ऐसे ही दूषित ओर विषाक्त भावोके कारण गजल बदनाम हो गई। इसकी अश्लीलतासे भले आदमी दामन बचाकर निकलने लगे। इसमे दुराचार और कामुकताके ऐसे घिनौने कीडे बिलबिलाने लगे कि लोग इसकी परछाईंसे भी दूर भागने लगे। इस छुतहा रोगसे बचानेके लिए 'हाली' और 'आजाद'ने भरसक प्रयत्न किये। लोगोका अनुमान था कि गजल अब जीवित नही रहेगी, परन्तु उसकी खुशकिस्मती देखिये कि कुछ ऐसे लोग पैदा हो गये, जिन्होने गजलको पुनर्जीवन ही प्रदान नही किया, अपितु उसे अमर कर दिया। उन्ही सपूतोमे एक 'शाद' अजीमाबादी है।

'शाद'का इश्क बाजारी इश्क न होकर पवित्र और उच्च है। जो शमअ सरेबाजार जलती है,ऐसी बेहयापर जल मरनेके 'शाद' कायल नही—

जो शमअ़ हुआ करती है रोशन सरे-बाज़ार।
उस शमअ़पै गिरता नही परवाना हमारा॥

'शाद' इश्कको जीका रोग नही समझते, बल्कि उनका विश्वास है कि इश्कसे इन्सानमे इन्सानियत आती है।

---

[1]उक्त अशके लिखनेमे अप्रेल १९५१के 'निगार'मे प्रकाशित सैयद शाह अताउलरहमानके लेखसे हमे पर्याप्त सहायता मिली है।—गोयलीय

नही रहते रिया[1] ओ-कवह[2] फिर भूलेसे भी दिलमें ।
मुहब्बत यारकी इन्सॉं बना देती है इन्साँको ॥

'शाद' भौरे या तितलीके इश्कको इश्क नही समझते । वे तो जिसके हो गये, जीवनभर उसे निभाना ही सच्ची आशिकी समझते है । मानवी प्रेमके साथ-साथ कोई ईश्वरीय प्रेमका भी दम भरे तो वह उसे कुफ्र समझते है—

मशरबेइश्कमें[3] दिला[4] ! कुफ्र है यारसे रिया[5] ।
दिलको है गर बुतोंसे इश्क, जिक्रे-खुदाकी वजह क्या ?

'शाद' इश्कसे तग आकर मरना नही चाहते, बल्कि वह तो उम्रे-दराज़ चाहते हैं —

मुझ-सा फकीर आपसे राजो-नियाज[6] हो ।
या रब ! हयाते-इश्के-मुहब्बत दराज[7] हो ॥

और वे अपने महबूबको इधर-उधर खोजना नादानी समझते हैं । उनका विश्वास है कि उनका प्रियतम सर्वत्र व्याप्त है—

गुबार आईनये-दिलका साफ हो तो फिर ।
उन्हीकी शक्ल नुमायॉं रहे जिधर देखो ॥

और जब ध्यानमे प्रियतम आ गया, तब वह ध्यान कैसे तोडा जाय ?

है जिसमें ध्यान कावये-अबरू-ए-यारका[8] ।
ऐसी नमाज जल्द इलाही अदा न हो ॥

---

[1]जाहिरदारी, दिखावटीपन; [2]बुराई, [3]प्रेमधर्ममे, [4]ऐ दिल; [5]दिखावटी प्रेम; [6]अन्तरग वार्तालापमे सम्मिलित; [7]प्रेमका जीवन लम्बा हो, [8]यारकी भवे रूपी काबेकी महराबका ।

और फिर एक दिन ऐसी स्थिति भी आ जाती है कि प्रेमी सुध-बुध विसारकर अपनेमे खो जाता है। नमाज़-रोज़े सब तर्क हो जाते हैं—

दिल है किधर खिंचा हुआ, महव है किसकी यादमें ?
क्या कहे इसकी वजह हम, तर्क हुई नमाज़ क्यों ?

आशिक कितना बावला है कि अपने प्रियतमकी खोजमे मारा-मारा फिरता है। सर्वत्र ढूँढता है, परन्तु अपना अन्तस्थल नही खोजता, हायरे भोलापन—

इसी चूकने हमे खो दिया, कहे 'शाद' किससे यह माजरा ?
कटी उम्र जिनकी तलाशमें, वह हमीं थे हमसे जुदा न थे ॥

जैन-पुराणोके अनुसार जब तीर्थंकर ससारमे जन्म लेते हैं, तो इन्द्र उनके अतुल रूपको निहारनेके लिए एक हजार नेत्र बना लेता है, फिर भी तृप्ति नही हो पाती। 'शाद' भी अपने हबीबको यूँ ही देखना चाहते हैं—

यही है धुन कि तेरी जलवागाहमें जाकर।
हज़ार आँखें हो, और सबसे यारको देखें ॥

'लिपटने' शब्दकी उर्दू-शायरोने जो मिट्टी खराब की है, वह किसीसे पोशीदा नही। औरोको तो जाने दीजिये, 'अकबर' इलाहाबादी जैसा मुहज्जिब आदमी यह कहनेसे नही चूका—

लिपट भी जा अरे 'अकबर'! गज़बकी ब्यूटी है।
नहीं-नहीं पै न जा, यह हयाकी ड्यूटी है॥

अब इसी ज़लील शब्दको 'शाद'की ज़बाने-मुबारकसे सुनिये—

शाद अजीमाबादी

लिपटकर काकुले-जानॉसे[1] नाजकर शानें[2]।
ख़ुदाने अर्शसे[3] रुत्बा तेरा बुलन्द किया॥

जिस जगह सती-सतवन्ती पाँव रख दे, वोह स्थान तीर्थ बन जाते हैं। जिन्हे वे छू ले, वे अमर और कृतकृत्य हो जाते हैं। फिर उस कघेके भाग्यका क्या कहना, जिसे उनके बालोको सँवारनेकी इनायत अता हुई हो। बेशक उसका मर्तबा आस्मानसे बदरजहा बेहतर है। हर घडी और हर जगह अपने प्रियतमकी यादमे लीन रहना ही तो वास्तविक नमाज़ है—

ज़बॉपै ज़िक्र तेरा उज्र्-ख्वाह दीदयेतर।
यही वज़ू है, इसीको नमाज़ कहते हैं॥

जब इश्कमे यह तल्लीनता आ जाती है तो वह बाअसर हो जाता है—

हज़ार शुक्र कि मुद्दतमे यह असर आया।
लिया जो नाम तेरा, दिलमे तू उतर आया॥

'शाद'की शराब वह शराब नही है, जिसे पीकर आदमी, आदमी न रह कर जानवर बन जाता है। 'शाद'की शराब वोह आध्यात्मिक सुरा है कि उससे बेसुध होनेपर स्वर्गके देवता भी सार-सँभाल करनेको दौड पड़ते हैं—

असर देखो जरा लगजिशमे 'या साकी'के कहनेका।
फ़रिश्ते दौडकर बाजू हमारा थाम लेते हैं॥

चन्द नमूने और देखिये, शादने शराबपर क्या पाकीज़ा शेर कहे है—

---

[1]प्रेयसीकी जुल्फोसे; [2]कघे; [3]आकाशसे।

लेके ख़ुद पीरेमुग़ाँ हाथमें मीना आया।
मयकशो! शर्म कि इसपर भी न पीना आया॥

मुग़ाजचे[1] हैं मुतहय्यर[2] मुतबस्सुम साकी।
पीनेवाले तुझे पीनेका न अन्दाज आया॥

इसी उम्मीदमें बाँधे हुए हैं टकटकी मैकश!
कफ़ेनाज़ुकपै साकी रखके एक दिन जाम आयेगा॥

सागर हमारा, मीना हमारा।
जन्नत हमारी, तौबा हमारा॥
दाताके दरसे लेकर फिरेंगे।
भरदेगा इक दिन कासा हमारा॥
मयपर किसीको, ख़ुमपर किसीको।
साकीपै अपने, दावा हमारा॥

बचाके हाथ अलग-से-अलग सुबू लेते।
यह क्या मजाल कि साकीका हाथ छू लेते॥

साकीकी चश्मेमस्तपै, मुश्किल नहीं निगाह।
मुश्किल सँभालना है दिले-बेकरारका॥

कहाँसे लाऊँ सब्रे-हज़रतेअयूब[3] ऐ साकी!
ख़ुम आयेगा, सुराही आयगी, तब जाम आयेगा॥

न दे इल्ज़ाम बदमस्तीका इक उफ़्ताद थी साक़ी!
मेरा गिरना, भरे सागरका चकनाचूर हो जाना॥

ग़ज़ब निगाहने साकीकी बन्दोबस्त किया।
शराब बादको दी पहले सबको मस्त किया॥

---

[1]शराब पिलानेवाले; [2]हैरान, [3]एक प्रसिद्ध सन्तोषी पैगम्बर।

देके तहीसुबू[1] मुझे सब्रका हौसला दिया।
जिसकी तलब थी साक़िया! उससे कही सिवा दिया॥

देखा किये वोह मस्त निगाहोसे बार-बार।
जब तक शराब आये, कई दौर हो गये॥

बुरा इस बज़्ममे था या भला मैं।
ख़ुदा हाफिज़ है, ले साक़ी! चला मैं॥

बग़ैर आत्मलीन हुए जीवनभर ईश्वर-ईश्वर पुकारनेसे क्या होता है? जहाँ उसमे अपनेको खोया नही कि एक सकेतपर फरिश्ते तो क्या ब्रह्माण्ड उलट सकता है। और जब मनुष्य आत्मलीन हो जाता है, तब उसके नेत्रोके आगेसे तू, मै, पर, का परदा हट जाता है।

इस्लामो-कुफ़्र, कुछ नही आता ख़यालमें।
मुद्दतसे मुब्तिला हूँ, मैं आप अपने हालमें॥

'उर्दू'को लेकर उर्दू-शायरोने कितनी गन्द उछाली है? कोई उसके मरनेकी दुआ माँगता है, कोई उसे अन्धा देखना चाहता है, कोई उसे हज़ारो गालियाँ देकर दिलकी भडास निकालता है। गरज उसे हर तरह बदनाम और बरबाद करनेके उपाय निरन्तर सोचे जाते है। 'शाद' उर्दूके बारेमे माशूकसे केवल इतना कहते है—

दोनोमें तू ही फर्क़कर लायके-महर[2] कौन है?
ग़ैर तेरा गिला करें, नाम न लें अदबसे हम॥

'कस्तूरबा'का निधन बन्दीगृहमे हुआ, उनकी समाधि भी वही बनाई गई! जीतेजी तो बन्दी रही ही, मृत्युके बाद भी शासकोने बन्दी बनाकर रखना चाहा। शादका यह शेर उक्त घटनापर कितना मौज़ूँ होता है—

---

[1]ख़ाली सुरापात्र, [2]कृपा योग्य।

कयामतका सितम है यह भी दुनियामें कि मरनेपर।
असीरोंकी[1] बनाई क़ब्र भी सैयादने घरमें ॥

ये मजहबी दीवाने धार्मिक उन्मादमे कैसे-कैसे अनर्थ कर बैठते है? बरसोकी राहोरस्म और चोली-दामनके साथको एक क्षणमे नष्ट कर देते है, इसका सबब 'शाद' साहब यह बतलाते है—

ज़बानें सख़्तबयानीपै वाइज़ोंकी खुली।
मुरव्वतोंको लपेट आये जानमाज़ोंमें[2] ॥

हम देशसे निष्काशित कितना ही कष्ट क्यो न उठा ले, परन्तु हमारे देशपर आँच न आये—

हम बेनवा[3] बलासे कफ़समें असीर[4] है।
या रव! मगर चमनमें ख़िज़ाँका[5] गुज़र न हो ॥

जो स्वयं आप नही उठता, उसे कोई भी सहारा नही देता। नेपोलियनने एक वार अपने सैनिकोको सम्बोधित करते हुए कहा था— "तुम ईश्वरपर भरोसा करो या न करो यह तुम्हारी इच्छापर निर्भर है, परन्तु मै इतना जताये देता हूँ कि तुम्हारी वारूद गीली है तो उसे सुखाने ईश्वर नही आयेगा; वह तुम्हीको सुखानी होगी।" इसी भावके द्योतक 'शाद'के चार शेर सुनिये—

यह बज़्मे-मै[6] है याँ कोताह दस्तीमें[7] है महरूमी[8]।
जो बढ़कर ख़ुद उठा ले हाथमें मीना[9] उसीका है ॥

---

[1]बन्दियोकी; [2]जिस चटाईपर नमाज़ पढी जाती है; [3]अनबोल, बेज़बान; [4]बन्दी; [5]पतझडका; [6]मधुशाला; [7]हाथ न उठानेमे; [8]वंचित रहना, [9]मद्य-पात्र।

समझता है इस दौरमें कौन किसको ?
करें 'रिन्द' ख़ुद अहतराम[1] अपना-अपना ॥

क्या गलत ज़ोम है! बाद अपने किसे गम अपना ?
हाथ काबूमें है, करलें अभी मातम अपना ॥

'शाद' आख़िर है शब और पाँवमें ताकत है अभी ।
इस सरासे है यही वक़्त निकल जानेका ॥

चन्द नैतिक शेर—

हसरत आमेज़[2] सदा आती है यूं कब्रोंसे—
"आज आता जो मेरे काम, न वोह् काम किया" ॥

अगर किसीकी बुराई भी दिलमें आई 'शाद' !
हमें तो अपनी ही नीयतसे ख़ुद हिजाब आया ॥

किसीके हम न काम आये, न कोई अपने काम आया ।
तअज्जुब है कि तो भी ज़ुमरये-इन्साँमें नाम आया ॥

यह मुमकिन है कि लिक्खी हो, कलमने फतह् आखिरमें ।
जो हैं अहबाबे-हिम्मत गम नहीं करते शिकस्तोंमें ॥

बशरके दिलमें न पडता जो आरज़ूका दाग ।
ख़ुदा गवाह कि अनमोल यह् नगीं होता ॥

भलाई इसलिए चाही कि हो भले मशहूर ।
ग़रज़ कि अपने ही मतलबके आश्ना थे हम ॥

बार जिन कलियोंपै थीं परछाइयाँ ।
ऐ ख़िज़ाँ ! पहले वही मुरझाइयाँ ॥

---

[1]आदर-सत्कार; [2]निराशाभरी आवाज़ ।

अभी नौखेज है रंगत जमानेकी नहीं देखी।
विकसती है जो कलियाँ, बाज गुंचे मुसकराते है ॥

'शाद' अपने विरोधियो और आलोचकोसे चिढते नही। न तुर्की-ब-तुर्की जवाब देते है। बल्कि यह कहकर चुप हो जाते है—

आख़िर तो समझ लेगा कोई नुक्ता रस इक दिन।
हासिदसे कहो 'शाद'को बदनाम किये जा ॥

१९३८मे प्रकाशित 'शाद'का दीवान 'मैखानये-इलहाम' हमारे समक्ष है। अनुमानतः ४,००० अशआर होगे। उनमेंसे चुनकर कुछ अशआर पेशेनजर है—

बारे-सुबू[1] वही उठाये जिसपै हो फज्ले-मैफरोश[2]।
जाहिदेख़ुश्क ! यह भी क्या बोझ है जानमाजका[3] ?
जलवये-हुस्नकी तरफ देख तो कुछ पता चले।
जाने दे, वलवला न पूछ आशिकेपाकबाजका ॥

कहाँ है उसका कूचा, कौन है वह ? क्या खबर कासिद !
पर इतना जानते है, नाम है आशिकनवाज उसका ॥
न छोडे जुस्तजूये-यार ख़िज़्रे-शौकसे कह दो।
किसी दिन खुद लगा लेगी, पता उम्रेदराज उसका ॥

अबस[4] शिकवा है मय-सी चीजका वाइज है क्यो दुश्मन।
बसीरत[5] जब नही, बेशक बजा है अहतराज उसका ॥
अब इसका जिक्र क्या कासिदपै जो गुजरी गुजरने दो।
न कहना इस खबरको 'शाद'से दिल है गुदाज[6] उसका ॥

---

[1]मद्यके घडेका बोझ; [2]शराब-विक्रेताकी कृपा; [3]नमाज पढने-की चटाईका; [4]व्यर्थ; [5]दृष्टि, बुद्धि; [6]द्रवित।

किसीको आबोहवा मुआफिक हुई न अफसोस इस चमनकी।
हमेश थे नालाकश अनादिल, गुलोंने ता उम्र खून थूका॥
पुकारकर वहशियोंसे कह दो "खिजाँका भी दौर है गनीमत।
क़बाके दामनको टाँक तो लें, अगर न मौका मिले रफ़ूका॥"

गुलोंपर क्या है, काँटो तकका मैं दिलसे दुआ-गो हूँ।
खुदावन्दा न टूटे दिल किसी दुश्मन-से-दुश्मनका॥

मौजेफना[1] मिटा न दे नामोनिशाँ वजूदका[2]।
देख हुबाबकी[3] तरह शौक न कर नमूदका[4]॥
ऐ शबेवस्ल! जा तो जा, ऐ शबेहिज्र! आ तो आ।
दिलने ख़याल उठा दिया, अपने जियाँ-ओ-सूदका[5]॥

बोरिया था, कुछ शबीना-मैं[6] थी, या टूटे सुबू।
और क्या इसके सिवा, मस्तोंके वीरानेमें था॥

बड़ा अहसाँ शबेगमने किया ऐ जागनेवाले!
यही तेरी खुली आँखें मिटा छोड़ेंगी शक तेरा॥
बहुत तूने जब अपने पाँव फैलाये तो क्या चारा?
अदब करती रही ऐ अश्क! मुद्दत तक पलक तेरा॥

गलीमें यारकी हो क़ब्र, या ख़राबेमें।
हमें तो हश्रके दिन तक कहींपै सो रहना॥

अगर मरते हुए लबपर न तेरा नाम आयेगा।
तो मैं मरनेसे दरगुजरा, मेरे किस काम आयेगा॥
शबेहिजराँकी सख्ती हो तो हो लेकिन यह क्या कम है?
कि लबपर रातभर रह-रहके तेरा नाम आयेगा॥

---

[1]मृत्यु-लहर; [2]अस्तित्वका, [3]पानीके बुलबुलेकी, [4]नामका [5]हानि-लाभका; [6]रातकी बची शराब।

यही कहकर अजलको कर्जख्वाहोंकी तरह टाला ।
कि "लेकर आज कासिद यारका पैगाम आयेगा ।।"
गलीमें यारकी ऐ 'शाद' ! सब मुश्ताक[1] बैठे हैं ।
खुदा जाने वहाँसे हुक्म किसके नाम आयेगा ?

जब अहले-होश कहते हैं अफसाना आपका ।
सुनता है और हँसता है दीवाना आपका ।।

सरापासोज[2] है ऐ दिल ! सरापा नूर हो जाना ।
अगर जलना तो जलकर, जलवागाहे-तूर हो जाना ।।

हमारे जख्मे-दिलने दिल्लगी अच्छी निकाली है ।
छुपायेसे तो छुप जाना मगर नासूर हो जाना ।।
खयालेवस्लको अब आरजू झूला झुलाती है ।
करीब आना दिलेमायूसके फिर दूर हो जाना ।।
शबेवस्ल अपनी आँखोंने अजब अन्धेर देखा है ।
नकाब उनका उलटना रातका काफूर हो जाना ।।

वोह जिबह करके यह कहते हैं मेरे लाशेसे--
"तड़प रहा है कि मुँह देखता है तू मेरा ?"
कराहनेमें मुझे उज्र क्या मगर ऐ दर्द !
गला दबाती है रह-रहके आबरू मेरा ।।
कहाँ किसीमें यह कुदरत सिवाय तेग़ेनिगाह ।
कि हो नियाममें और काट ले गुलू मेरा ।।

इसे कहते हैं खूबी हम तो इस ख़ूबीके क़ायल हैं ।
हुआ जब जिक्र यकताईका, नाम आया वहीं तेरा ।।

---

[1]अभिलाषी, [2]पूर्णरूपेण जलना ।

बहुत सरगोशियाँ[1] करने लगे रस्तेमें अब रहबर[2]!
बहुत चर्चा है बाजारोमे ऐ खिलवतनशीं[3]! तेरा ॥

दिलकी यकसूईने बेपरदा दिखाया था तुझे।
बीचमें मुफ़्त कदम आ गया बीनाईका[4] ॥

मुँहपै आशिकके मुहब्बतकी शिकायत, नासेह!
बात करनेका भी नादाँ न करीना आया ॥
आ गया था जो खराबातमें[5] पी लेनी थी।
तुझको सुहबतका भी जाहिद न करीना आया ॥

तेरी गलीमें रकीब आयें और मैं देखूँ।
कसम है तेरे कदमकी तेरा खयाल किया ॥
तलबके पहले ही जब हुक्म दे चुका था तू।
तेरे फ़कीरने क्या सोचकर सवाल किया ॥

चाक करनेका है इलजाम मेरे सर नाहक।
हाथ उनका है, मैं उनका हूँ, गरीबाँ उनका ॥

अब अश्कमें तेरे आता नही लहू ऐ चश्म!
तुझीपै क्या है? जमानेका खूँ सफेद हुआ ॥

समझ-समझके बढ़ा दस्ते-आरजू ऐ मस्त!
न मयकदा न सबूही न खुम न जाम तेरा ॥

न मरनेवालोकी आँखें न दिल है काबूमें।
यह कौन वक़्त था आया है कब पयाम तेरा?

---

[1]कानाफूँसी; [2]पथ-प्रदर्शक; [3]एकान्तमे रहनेवाले; [4]दृष्टिका; [5]मधुशालामे।

यह अख़्तियार तुझे है कि दे न दे साक़ी !
गिला समझते हैं हम बादाकश हराम तेरा ॥

जहाँ चाहे लगे, जिस दिलको चाहे चूर कर डाले ।
ज़बाँसे फेंक मारा, बात थी नासेह कि ढेला था ॥

ज़बाँपे आह जो आई तो हँसके टाल दिया ।
किसीके इश्कका अफसाना मैंने राज किया ॥

हर निवाला अब तो उसका तल्ख़ है ।
उम्र नेमत थी मगर जी भर गया ॥
जिस गलीमें था वहाँ थी क्या कमी ?
ऐ गदा[1] ! क्यों माँगने दर-दर गया ?

ताबूतपै[2] मेरे आये जो वोह , मिट्टीमें मिलाया यूँ कहकर—
"फैला दिये दस्तो-पा[3] तूने इतने ही में बस जी छूट गया ॥"

उन्हें जो मंज़ूर देखना है तो आके ऐसेमें देख जायें !
लिया सहारा मरीज़ेगमने, चराग कुछ बुझके झिलमिलाया ॥

निकहतेगुल[4] बहुत इतराई हुई फिरती है ।
वोह कहीं खोल भी दें तुर्रयेगेसू[5] अपना ॥
निकहते-ख़ुल्देवरीं[6] फैल गईं कोसोंतक ।
वोह नहाकर जो सुखाने लगे गेसू[7] अपना ॥
लिल्लाह हमद ! कदूरत[8] नहीं रहने पाती ।
मुँह धुला देता है हर सुबहको आँसू अपना ॥

---

[1]भिक्षुक, [2]अर्थीपै [3]हाथ-पाँव; [4]फूलकी गन्ध; [5]चोटी; [6]जन्नत-जैसी सुगन्ध, [7]बाल, [8]द्वेष-भावना ।

ग़ममें परवानये-मरहूमके[1] थमते नही अश्क।
शमअ् ! ऐ शमअ् ! ज़रा देख तो मुँह तू अपना ॥

सुबू अपना-अपना है जाम अपना-अपना।
किये जाओ मयख्वार काम अपना-अपना ॥
न फिर हम न अफ़सानागो ऐ शबेग़म[2] !
सहरतक[3] है किस्सा तमाम अपना-अपना ॥
जिनाँमें[4] है ज़ाहिद, तेरे दरपै हम है।
महल अपना-अपना, मुकाम अपना-अपना ॥
हुबाबो[5] ! हम अपनी कहे या तुम्हारी।
बस एक दम-के-दम है कयाम अपना-अपना ॥
कहाँ निकहतेगुल,[6] कहाँ बूये-गेसू[7] !
दमाग अपना-अपना मशाम[8] अपना-अपना ॥
ख़राबातमें मयकशो ! आके चुन लो।
नबी अपना-अपना इमाम अपना-अपना ॥

हम वह मैकश है कि सागरकी तरह ऐ साकी !
सर हमेशा तेरी ख़िदमतमें रहा ख़म अपना ॥
ऐ असीराने कफस ! कुछ तो शगुन अच्छा है।
हाथ जाता है गरीबाँको जो पैहम[9] अपना ॥

मेरा सब हाल कह लेना तो कासिद ! यह भी कह देना—
"ख़बर कर दी तुम्हे, है अख्तयार आने-न-आनेका ॥"

हश्रमें जो है, वोह लेता है कदम झुक-झुककर।
आज देखे कोई रुत्बा तेरे दीवानेका ॥

---

[1]मृतक पतगेके, [2]दुखकी रात्रि, [3]प्रात कालतक, [4]जन्नतमे; [5]पानीके बुलबुलो, [6]फूलकी सुगन्ध, [7]बालोकी ख़ुशबू, [8]सूँघनेकी सामर्थ्य, मस्तक, [9]बार-बार।

चला जाऊँगा मैं जो महफ़िलसे तेरी।
कोई और मेरी जगह आ रहेगा॥
यह दुनिया है ऐ 'शाद'! नाहक न उलझो।
हर इक कुछ तो अपनी-सी आख़िर कहेगा॥

जब किसीने हाल पूछा रो दिया!
चश्मेतर! तूने तो मुझको खो दिया॥
दाग़ हो या सोज़ हो, या दर्देग़म।
ले लिये ख़ुश होके जिसने जो दिया॥

दैरोहरममें[1] गर नहीं, ख़ैर न हों नहीं सही।
मेरे ही पास जब नहीं, आप कहीं हुए तो क्या?
हम थे मिटे हुए यूँ ही, रोज़े-अज़लसे[2] ऐ अजल[3]!
रूयेज़मींपै है तो क्या, ज़ेरे-ज़मी हुए तो क्या?
जोशे-शबाबमें दिला! कुफ़्रमें भी था इक मज़ा।
मिट गई जीकी जब उमंग, तालिबे-दीं हुए तो क्या?

हमसे सहरागर्दको[4] छोड ऐ ग़ुबार[5]!
तू कहाँ तक पीछे-पीछे आयगा?
खो गये हैं दोनों जानिबके सिरे।
कौन दिलकी गुत्थियाँ सुलझायगा?
मैं कहाँ, वाइज़ कहाँ, तौबा करो!
जो न समझा ख़ुद वोह क्या समझायगा?
बाग़में क्या जाऊँ, सरपर है ख़िज़ाँ।
गुलका उतरा मुँह न देखा जायगा॥

---

[1]मन्दिर-मस्जिदमें; [2]सृष्टिके आदिसे, [3]मृत्यु, [4]जंगलोंमें विचरनेवालेको, [5]रेतीले प्रदेशोंमें उठता हुआ धूलका अम्बार।

सबक तो मकतबे-उल्फतमे सबका था यकसाँ।
किसीको शुक्र, किसीको फ़कत गिला आया॥
शराब दे कि न दे तुझपै मैं फिदा साकी!
मुझे तो बातमे तेरी बड़ा मजा आया॥
सुबूके आते ही अल्लाहरे ख़ुशी ऐ मस्त!
इमाम आये, रसूल आ गये, ख़ुदा आया॥

ज़ाहिदसे जब सुनो तो जबाँपर है जिक्रे-हूर।
नीयत हुई खराब तो ईमान कब रहा?

हज़रते 'शाद'से करनी है फरिश्तो! क्या अर्ज़?
चुप रहो, गुल न करो, आपने आराम किया॥

तेरे कमालकी हद कब कोई बशर समझा।
उसी कदर उसे हैरत है, जिस कदर समझा॥
कभी न बन्दे-कबा खोलकर किया आराम।
गरीबख़ानेको तुमने न अपना घर समझा॥
पयामेवस्लका मज़मूँ बहुत है पेचीदा।
कई तरह इसी मतलबको नामाबर समझा॥
न खुल सका तेरी बातोंका एकसे मतलब।
मगर समझनेको अपनी-सी हर बशर समझा॥

शबेगम सूँघ गया साँप मौअज्ज़नको[1] भी।
आज जल्दीसे न काफिरको ख़ुदा याद आया॥
हकपरस्तोंके यह माने हैं तो ज़ाहिद मैं बाज़।
जब बुतोंपर न चला ज़ोर ख़ुदा याद आया॥

---

[1]अज़ान देनेवालेको।

सदमा तेरे फ़िराकका मैं क्या करूँ बयाँ ?
बस इन्तहा तो यह है कि मरनेका डर न था ॥

हुजूमे-ग़मने सिखानेकी लाख की कोशिश।
हमें तो आह भी करना न उम्रभर आया ॥
लहदमें शाना हिलाकर यह मौत कहती है—
"ले अब तो चौंक मुसाफ़िर कि अपने घर आया"
हज़ार शुक्र ! हुआ आफताबे-हश्र तुलू[1]।
बड़ी तो बात रही यह कि तू नज़र आया ॥

चली जो रूह तो यूँ जिस्मसे कहा मुड़कर—
"कि हस्बख्वाह न मेहमाँका अहतराम[2] हुआ।"
मिली न 'शाद'को अफसोस कोई नेमतेख़ास।
बस इन्तहा है कि मरना तलक भी आम हुआ ॥

जवाब है कहीं इस हदकी बदगुमानीका।
कि मिटनेवाले मिटे और मिटा न शक तेरा ॥

ख़मोश है तेरे नालोंपै यह ग़नीमत जान।
अगर जवाबमें कह दे कि "मैं नहीं सुनता ॥"

जो कली सूख गई वोह तो खिलेगी न कभी।
बाग़में फस्लेबहार आये तो क्या, जाये तो क्या ?

फिर आज शामसे नासेह ! है ग़ैर हाल अपना।
तुझे है अपना ख़याल, है मुझे ख़याल अपना ॥
शराबख़ानेसे टलना मुहाल है वाइज़ !
बिका हुआ है इसी घरमें बाल-बाल अपना ॥

---

[1]प्रलयका सूर्य निकला; [2]आदर-सत्कार।

खबर मिली थी कि आयेंगे आज शामको वोह।
हमी समझते हैं, जिस तरह दिन तमाम किया॥

जगह दामनमें हम क्योंकर न देते।
कि तिफ़्लेअश्क[1] अपना ही लहू था॥

मेरी तरफसे हरममें[2] न कुछ सबा[3]! कहना।
सलाम ज़ुहदको[4] और इश्कको दुआ कहना॥

फिराकेयारमें रोनेकी हद क्या?
समन्दर है किनारा आस्तीका॥
मेरी मायूसियोंको कुछ न पूछो।
न दुनियाका भरोसा है न दींका॥

किसीको हुस्न दिया और किसीको माल दिया।
गरीब जानके उसने मुझीको टाल दिया॥

ज़र्रे-ज़र्रेको तेरे कूचेमें था मुझसे गुबार।
मैं जो करता भी तो किस-किससे सफाई करता॥

खुशी बहारकी धडका खिज़ांके आनेका।
गुलो! फकत यह उलट-फेर है ज़मानेका॥

चुस्त कमरका क्या सबब तंग क़बाकी वजह क्या?
हम तो किये हैं दिल निसार, हमसे अदाकी वजह क्या?
खाकमें जो मिला हो खुद, उसपै सितमसे फायदा?
हुस्नकी यह सरिश्त है, वरना जफाकी वजह क्या?

---

[1]आँसूरूपी पुत्र, [2]कावेमे, [3]वायु, [4]दिखावटी उपासनाको दूरसे ही प्रणाम करना।

वस्ल आख़िर लफ़्ज़े-बेमानी बने।
तूल इतना ऐ फ़िराकेयार! खींच॥

ख़तेशौक अपना लिफ़ाफ़ेमें रखो।
आरज़ूओंको कफ़न पहनाओ 'शाद'!

मेरी ख़ताकी नहीं हद, मगर सज़ा महदूद।
वफ़ूरे-शौक[1] यहाँ, और तेरी जफ़ा महदूद॥

फिर गये रास्तेसे वोह गर्दोगुबार देखकर।
रह गई मेरी बेकसी सूये-मज़ार[2] देखकर॥
वस्लो-फ़िराककी ख़बर कौन पढ़े किसे दमाग़?
बढ़ गई और बेख़ुदी नामयेयार देखकर॥

उठ गये उस मुक़ामसे अश्क भर आये जिस जगह।
आज तलक बचाये हैं, इश्ककी आबरूको हम॥

उदू देखें ख़ुशी, अहबाब तेरे रंजोग़म देखें।
कहाँसे यह कलेजा लायें, किन आँखोंसे हम देखें?
न आई दो घड़ी पहले अजल अफ़सोस क्या करिये।
रकीब और हाथ रखकर तेरे बीमारोंका दम देखें॥

बज़्ममें साक़िया शराब बढ़ती है सफ़को[3] तोड़कर।
सब तो हैं एक हालमें, उसपै यह इम्तयाज़[4] क्यों?

तेरी गलीके कऊदो-क़यामकी क्या बात!
इसीको दिलकी ज़बाँमें नमाज़ कहते हैं॥

---

[1]अभिलाषाकी अधिकता, [2]समाधिकी तरफ़; [3]पंक्तिको; [4]भेद-भाव।

बेजाये करीबे-नख़्लेगुल, चारा ही नही कुछ बुलबुलको ।
सैयादका देखो ज़ुल्म ज़रा, ज़ालिमने छुपाया दाम कहाँ ?

वोह खुशनिगाह नही, जिसमे ख़ुदनुमाई नही ।
यह चश्मदीदा है, बातें सुनी-सुनाई नही ।
ख़यालसे है कही दूर आस्तानए-दोस्त !
वहाँका शौक है दिलको, जहाँ रसाई नही ।।
मरीज़े-हिज्रको लाज़िम है तेरे ज़ुल्मकी याद ।
दवा यही है मगर हमने आज़माई नहीं ।।
वोह आशिकोसे है नाराज़ क्यो, ख़ुदा जाने ?
वफ़ूरे-शौकका होना कोई बुराई नहीं ।।
ज़बाँपै ज़िक्र मगर दिलमें वसवसा ऐ 'शाद' !
खता मुआफ यह धोका है पारसाई नहीं ।।

हमें पैग़ाम्बरने कुछ तो ऐसी ही खबर दी है ।
कहें क्या तुझसे ऐ नासेह ! कि किस मतलबसे जीते हैं ?

उन्हे देखो कि अबतक ग़फ़लतोसे काम लेते है ।
हमें देखो कि बेदेखे उन्हीका नाम लेते है ।।

जहाँतक हो बसरकर ज़िन्दगी आला ख़यालोमें ।
बना देता है कामिल बैठना साहब-कमालोमें ।।

जो आँखें हो तो चश्मेगौरसे औराक़े-गुल[1] देखो ।
किसीके हुस्नकी शरहे[2], लिखी हैं इन रिसालोमें ।।

वोह सलामत रहे इतना भी बहुत है कासिद !
पूछ लेते हैं, ग़रीबोपै करम[3] करते हैं ।।

---

[1]फूलकी पत्ती रूपी पृष्ठ, [2]टीकायें, [3]दया ।

जो दें सवालपै उनकी सनद नहीं ऐ 'शाद' !
वही करीम है जो बेसवाल देते हैं ॥

पैराक वही हिज्रेमुहब्बतके है ऐ 'शाद' !
डूबें तो किसी हाल उभरते ही नहीं है ॥

इश्क और अक़्लमें ऐ दोस्त ! हमेशासे है बैर ।
लोग जो कुछ मुझे कहते है बजा कहते है ॥

हूँ इस कूचेके हर जर्रेसे वाकिफ ।
इधरसे उम्र भर आया-गया हूँ ॥
लहदमें[1] क्यो न जाऊँ मुँह छुपाये ।
भरी महफिलसे उठवाया गया हूँ ॥
कुजा मैं और कुजा ऐ 'शाद' दुनिया ।
कहाँसे किस जगह लाया गया हूँ ॥

सराये-दहरमें[2] ऐ रूह ! अपना जी नही लगता ।
ख़ुदा जाने, यहाँ कितने दिनो रहनेको आये है ॥

मेरी तलाशसे मिल जाय तू, तो तू ही नही ।
इस अम्रेख़ासमें कुछ जायेगुफ़्तगू ही नहीं ॥
नियाज़मन्दको लाज़िम है चश्मतर रखना ।
अदा नमाज़ न होगी अगर वज़ू ही नही ॥
वोह दामन अपना उठाये हुए है क्यो दमे-क़त्ल ?
ख़ुदाके फज़्लसे याँ जिस्ममें लहू ही नहीं ॥

सदा यह आती है कब्रोसे—"घुट रहा है दम ।
कि बेकसीके सिवा कोई आस-पास नहीं ॥"

---

[1]कब्रमें, [2]संसाररूपी सरायमें ।

फसाना कैससे सौदाये-इश्कका पूछो।
मुझे तो सरके खुजानेका भी हवास नही॥

हुस्नो-इश्क एक है, जाहिरमे फकत नाम है दो।
यह अगर सच है तो, क्या उनके बराबर हम है ?
अक़्लसे राह जो पूछी तो पुकारा यह जुनूँ —
"वह तो खुद भटकी हुई फिरती है, रहबर[1] हम है॥"

हिज्रके बाद अगर है वस्ल, तब तो कोई अलम नही।
रहम है जिसकी इन्तहा, फिर वह सितम-सितम नही॥

वाइजको अख्तयार है, चाहे वह हो मलूल।
हम तो कलामे-हकका बुरा मानते नही॥
ऐ 'शाद' जिनके साथ जमाना बसर किया।
अल्लाह ! अब वही मुझे पहचानते नही॥

बेकार हमको जिबह किये देती है बहार।
बरसा चमनमे अब्र कि तेगे बरस गई॥

परवानेकी बिसात ही क्या थी फना हुआ।
देखा तो शमअ् भी न रही अपने हालमे॥

रुसवाइयाँ गजबकी हुई तेरी राहमें।
हद है कि खुद जलील हूँ अपनी निगाहमे॥
मै भी कहूँगा देंगे जो आजा[2] गवाहियाँ।
या रब ! यह सब शरीक थे मेरे गुनाहमें॥
थी जुजवे-नातवाँ[3] किसी जर्रेमें मिल गई।
हस्तीका क्या वजूद तेरी जलवागाहमें॥

---

[1]पथ-प्रदर्शक, [2]इन्द्रियाँ, [3]निर्बलताके परमाणु।

ऐ 'शाद' ! और कुछ न मिला जब बरायेनज्र[1] ।
शरमिन्दगीको लेके चले बारगाहमें[2] ॥

बजाहिर मिल नहीं सकता अदाका तेरी अन्दाजा ।
मगर अहले-नजर आँखोमें सब कुछ तोल लेते हैं ॥

कही निशाँ न मिलेगा तेरा हमें न सही ।
किसीका क्या है हम अपनेको आप खोते हैं ॥

हम ऐसे गुमशुदा इन्साँका जिक्र क्या ऐ 'शाद' !
जो बा-निशाँ थे उन्हींका कही निशान नहीं ॥

निकली यह कहके आलमे-पीरीमें[3] तनसे रूह—
"बस अब हमारे रहनेके काबिल यह घर नहीं ॥"

मंजिले-दोस्तका निशाँ देखिये किस तरह मिले ।
अक़्ल तो खुद बहक गई, अब किसे रहनुमा करें ?

कोई मातम करे मेरे लिए क्यों ?
सजा जीनेकी है, इतना जिये क्यो ?

कुछ अख्तयार है मालिक उरूज दे जिसको ।
वोह शहसवार कहाँ और मेरा गुबार कहाँ ?

कहने लगते हैं जवानीकी कहानी जो कभी ।
पहले हम देर तलक बैठके रो लेते हैं ॥
एक तो जाम फिर उस हाथसे अहसनत ऐ 'शाद' !
यूँ कहो, पाते हैं हम, यूँ न कहो, लेते हैं ॥

---

[1]ईश्वरको भेट करनेके लिए, [2]ईशमन्दिरमे; [3]वृद्धावस्थामे ।

खुदा शाहिद, बुरा कहता नहीं जन्नतको मैं लेकिन।
मजा कुछ और ही है, मै-कशीका बादाखानेमें ॥

दराजी उम्रकी हदसे जियादा जब सताती है।
ब-हसरत हम तुझे ऐ मौत! घड़ियों याद करते हैं ॥

हजार तल्ख[1] है, पीरेमुगॉने[2] जब दी है।
खुदा न करदा[3] जो मैं मुँह बना-बनाके पियूँ ॥
मजा है बादाकशीका वही तो ऐ साकी!
पियूँ जो अब तो तेरे आस्तॉपै आके पियूँ ॥
जमींपै जामको रख दे जरा ठहर साकी!
मैं इसपै हो लूँ तसद्दुक तो फिर उठाके पियूँ ॥

अब उनका नाम न ले हिज्रमें कटी जो शबें।
कर उनका जिक्र जो सरपर दिन आनेवाले हैं ॥

तड़पना देखते हो दोस्तो! रह-रहके बिजलीका।
न फँस जाये कोई बेकस बलाये-आस्मानीमें ॥

वफाके मुद्दई शिकवा जफाका लबपै लाते हैं।
वोह गोया बेवफा है, हम वफ़ा करना सिखाते हैं।
जफायें उनकी हैं बेमसलहत? अक्लोके नाखुन लो ॥
अब ऐसे क्या वोह भोले हैं, कि बेसोचे सताते हैं ॥

दरीचा खोलकर सुलझाते हैं वोह मुश्कबू जुल्फें।
यह खुश्बू सूंघ लो ऐसेमें आकर ऐ! वतनवालो ॥

अपनी हस्तीको गमोदर्द मुसीबत समझो।
मौतकी कैद लगा दी है, गनीमत समझो ॥

---

[1]कडवी, [2]मधुशाला-स्वामीने; [3]खुदा न करे।

फ़ैसला होता है नेकी-ओ-बदीका हरदम।
दिलको इस सीनेमे छोटी-सी अदालत समझो॥

मयस्सर जिनका था दीदार बेखटके ज़मानेको।
वही ख़ुश चश्म अब मिलते नही सुर्मा लगानेको॥
दमे-आख़िर हमारे दिलमे यूँ उम्मीद आती है।
कोई जाये कही शर्मिन्दगी जैसे मिटानेको॥

लेता है मेरा ज़ख्मेजिगर बोसे-पै-बोसे।
पैकाँपै कही नाम तुम्हारा खुदा न हो॥

वोह पूछते ही रह गये वजहे-मलालेगम।
हम सोचते रहे जो कही कुछ गिला न हो॥
नाज़ुक मिजाज दिलको ही अहसाँ नही पसन्द।
शर्मिन्दये-क़ुबूल हमारी दुआ न हो॥
क़ासिद! वोह बात कह कि यकीकुछ तो दिलको आय।
क्या कह रहा है तू कही वादा किया न हो॥

यह सब दुरुस्त कि तुम बुत भी हो ख़ुदा भी हो।
मगर नियाज़के क़ाबिल यह दिल रहा भी हो॥

दिल उसकी बारगाहमें सजदे करे तो क्या?
अपने नियाज़मन्दसे जो बेनियाज़ हो॥

कोई ऐ 'शाद'! पूछे या न पूछे इससे क्या मतलब?
ख़ुद अपनी क़द्र करनी चाहिए साहब-कमालोको॥

"मरीज़े-इश्कको मरते कभी नही देखा।"
दबी ज़बांसे यह क्या कह गये, इधर देखो!

मुर्दोंकी कनाअ़तोपै है रश्क ।
पहने रहे इक कफ़न हमेशा ॥

अपनी आँखोका यह ईमा है ख़यालेयारसे ।
तूने बेमौसमकी बरसातें न देखी हों तो देख ॥
एक हसरत दो तरफ़ रहती है, मसरूफ़े-कलाम ।
तख़लियेकी[1] गर मुलाकातें न देखी हो तो देख ॥

'शाद' ! आता है बगोला अपने इस्तक़बालको[2] ।
दश्तेगुरबतकी[3] मदारातें[4] न देखी हो, तो देख ॥

बरसरेदार[5] खिंचे या न खिंचे वोह लेकिन ।
जो कहे कलमयेहक़[6] तू उसे मंसूर समझ ॥

जुम्बिशे-अबरूये-ख़मदारका पूछो न सबब ।
रक्खे-रक्खे यह कमाँ यूँ भी कड़क जाती है ॥

बहुत कुछ पाँव फैलाकर भी देखा 'शाद' दुनियामें ।
मगर आख़िर जगह हमने न दो गज़के सिवा पाई ॥

लगा न दे तेरी रफ़्तारे-नाज़में धब्बा ।
कहीं-कहीं जो निशाने-मज़ार बाकी है ॥

न रोकती जो मुझे ऐ ज़मीं ! कशिश तेरी ।
तो मेरी ख़ाक ख़ुदा जाने क्या-से-क्या होती ॥
तेरी तलाशमें हमने मिला दी ख़ाकमें उम्र ।
तू ही बता कि यह कम्बख़्त रहके क्या होती ?

---

[1]एकान्तकी, [2]स्वागतको; [3]प्रवासके जगलकी, [4]आवभगत; [5]फाँसीके तख़्तेपर; [6]सत्य वात ।

गुलोंने खारोके छेड़नेपर सिवा खमोशीके दम न मारा।
शरीफ उलझें अगर किसीसे तो फिर शराफत कहाँ रहेगी ?

बुतकदा है कि खराबात[1] है या मस्जिद है।
हम तो सिर्फ आपके तालिब है खुदा शाहिद है॥
न मुसल्लेकी जरूरत है न मिम्बर[2] दरकार।
जिस जगह याद करे तुझको, वही मस्जिद है॥

वोह चाहे बदले-न-बदलें मेरे मुकद्दरको।
किसी कदर मुझे तसकी तो है दुआ करके॥

सुनें कि हम न सुनें तूने खुद दिया है जवाब।
हुजूमेयासमें[3] जब-जब तुझे पुकारा है॥

यह शर्त आपसमें की थी, मै निकलती हूँ कि तू पहले।
मगर की रूहने सबकत न निकली आरजू पहले॥

मेरी जिन्दगानीका सौदा गरॉ है।
घटे तो जियाँ[4] है, बढे तो जियाँ है॥

निकालें बहरेगमसे डूबतोको यह कहाँ हिम्मत!
खुद अपने हाथसे अपना डुबोना हमको आता है॥
निचोडें बैठकर, फिर खुश्क कर लें, यह नहीं आता।
जहाँ बैठे वहाँ दामन भिगोना हमको आता है॥

फलकका जिक्र तो क्या है, जमींके भी न रहे।
हम अपनी चालमें आखिर कहीके भी न रहे॥

---

[1]मधुशाला; [2]मस्जिदका वह स्थान जहाँ भाषण दिया जाता है;
[3]निराशाओमें; [4]नुक्सान, घाटा।

वोह् साहबे-असर हूँ कि ऐ 'शाद'! बादे-मर्ग।
बोसे लिये है मेरी लहदके रकीबने ॥

असर अब इससे ज़ियादा वफाका क्या होगा।
कसम हमारी मुहब्बतकी लोग खाने लगे ॥

वोह् नातवाँ[1] हूँ कि नाला मेरा तेरे दर तक।
लिये गया मुझे बेअख्तयार खींचे हुए ॥

मैं और अर्ज़ करूँ क्या जनाबे-नासेह्से।
बस एक आप गरीबोंके खैरख्वाह् मिले!

वोह् ज़माना वस्लका क्या हुआ, कभी आश्नाये-जफा न थे।
कि बदनसे रूह् अलग भी थी, मगर आप हमसे जुदा न थे ॥
दिलेमुज़तरब! तुझे क्या कहूँ? अबस उनके पाँवपै सर रखा ॥
जो खफा भी हो गये थे तो क्या, कि वोह् आदमी थे ख़ुदा न थे ॥
हुए जाके तालिबेदीद जो, यह् कुसूर है तो उन्हीका है।
कोई और होंगे वोह् बदयकी, तेरे आस्ताँके गदा[2] न थे ॥

किसीकी बात भला उसके दिलपै क्या लगती?
खुदाके बन्दोंने यूँ तो कही ख़ुदा लगती ॥

हवाये-दहर[3] बिगाडे हज़ार फूलोंको।
न हो वोह् रंग, शराफतकी कुछ तो बू होगी ॥

बवक़्ते-नज़अ् वोह् नाह्क चले गये उठकर।
हम उसके बाद तो आँखोंको खुद फिरा लेते ॥

मैं निसार अपने ख़यालपर कि बग़ैर मयके हैं मस्तियाँ।
न तो ख़ुम है पेशेनज़र कोई, न सुबू है पास न जाम है ॥

---

[1] निर्बल; [2] भिक्षुक; [3] ससारकी हवा।

बड़ी मुश्किलोंसे हुआ है हल यह किताबेउम्रका मसअला।
उन्हे वस्लेग़ैर हलाल है, हमें शबकी नींद हराम है॥

इसी सोचमे है दिलेहज़ीं, कि कयामत आनेको आयेगी।
हुए उनसे तालिबेदीद हम, वोह कहेगे—"मजमये आम है॥"

कह दो मरीजेग़मसे कि आयेंगे क़ब्रपर।
रख लो खुदाके वास्ते, इतनी-सी जान भी॥

बिछाकर जो गया बिस्तरपै काँटे।
वही ज़ालिम मेरा आरामे-जाँ था॥

जिसका दिल मुरझा चुका हो ऐ सबा! उसके लिए।
फस्लेगुल आई तो क्या, अब्रे-बहार आया तो क्या?

भला हुआ कि उड़ा दी सबाने ख़ाक मेरी।
तेरा तो सरपै न अहसान ऐ ज़मीन! लिया॥

आराम कर लो क़ब्रमें चन्दे मुसाफिरो!
मंज़िल तक और अब कोई मेहमाँ सरा नहीं॥
दो-चार वक़्त जाते है रोज़ उस गलीमें हम।
अबतक कोई नमाज़ हमारी क़ज़ा नही॥

मज़ा मिल जायगा जीनेका तुझको।
किसी ज़ालिमपै नासेह तू भी मर देख॥

ऐसा न हो मलाइक[1] करने लगें शिकायत।
तीरे-नज़र तुम्हारा कुछ दूर जा पड़ा है॥

रहे-व़फामें[2] कदम डिग न जायें देख ऐ दिल!
सतानेवाले अभी बहुत कुछ सतायेंगे॥

---

[1]फरिश्ते, [2]नेकीके मार्गमें।

यह अदा, यह उनका मिलना, यही कह रहा है मुझसे !
कि जफा भी अब जो होगी तो ब-शक्लेनाज़ होगी ।।

नज़र आये-न-आये कोई आँसू पूछनेवाला ।
मेरे रोनेकी दाद ऐ बेकसी ! दीवारो-दर देंगे ।।

उसके लिए तो हाथ उठाना भी है गुनाह ।
जिसकी दुआ हों आप, वोह फिर क्या दुआ करे ?

मोती तुम्हारे कानके थर्रा रहे है क्यो ?
फरियाद किस ग़रीबकी गोश-आश्ना हुई ।।

गुलिस्ताने-जहाँमें बस वही आज़ाद इन्साँ है ।
सबाकी तरह जिस गुलसे मिले उसको हँसा आये ।।

तुलनात्मक अशआर

अब हम 'आतिश' और 'शाद'की हमतरही गजलोके चन्द तुलनात्मक शेर पेश कर रहे है, ताकि पाठक जान सके कि एक ही काफियेमे दोनो उस्तादोने कैसे-कैसे मजामीन नज्म किये है। और दोनोका मर्तबा गजल-गोईमे कितना ऊँचा है। जहाँ शादने 'आतिश'के किसी काफियेपर शेर नही कहा है, वहाँ मजबूरन उससे मिलता-जुलता शादके दूसरे काफिये-का शेर दे दिया है।

आतिश— न पूछ हाल मेरा चौबे-ख़ुश्के-सहरा[1] हूँ ।
लगाके आग मुझे, कारवाँ[2] रवाना हुआ ।।

शाद— ख़ुदा बुरा करे इस नींदका यह कैसी नींद ?
खुली कब आँख कि, जब कारवाँ रवाना हुआ ।।

---

[1]जगलकी सूखी लकडी; [2]यात्रीदल ।

आतिश— भरा है सीनये-दिल कूचए-मुहब्बतसे।
खुदाका घर था जहाँ, वाँ शराबखाना हुआ॥

शाद— गजब किया तेरे जानेने बज्ममें[1] साकी!
बुलन्द चारतरफ़ शोर आमयाना[2] हुआ॥

आतिश— हो जाये हुस्नेमानी बेसूरत आश्कार।
रूये-हकीकत उलटे जो परदा मजाजका॥

शाद— उनकी निगाहेनाज़ जो पलटी तो देखना।
मुँह देखती रहेगी हकीकत, मजाजका॥

आतिश— साकी! जलाल[3]-ओ-दर्द जो तौफीक[4] हो सो दे।
मस्तोंको तेरे होश कहाँ इम्तयाजका[5]॥

शाद— देखा तो होगा हमने अजलमें तेरा जमाल।
लेकिन वोह कोई वक़्त न था इम्तयाजका॥

आतिश— क्योंकर वोह नाजनीन करे बेनियाजियाँ।
अन्दाजसे भी हौसला आली है नाजका॥

शाद— किस तरह दिलपै फित्नये-महशरका हो असर।
हंगामा याद है तेरी रफ़्तारे-नाजका॥

आतिश— याद करके अपनी बरबादीको रो देते हैं हम।
जब उड़ाती है हवाए-तुन्द[6] खाके-कूये-दोस्त[7]॥

शाद— लाशये-उरियाने-आशिक़का[8] कोई देखे विकार[9]।
ढाँकती है उठके किस उलफतसे खाके-कूये-दोस्त॥

---

[1]महफिलमें; [2]आमफहम; [3]रूपका दर्शन, चमत्कार; [4]हौसला, सामर्थ्य, [5]थोड़े-बहुतके भेदका। [6]तेज हवा; [7]प्रेयसीके कूचेकी धूल; [8]प्रेमीकी नग्न-लाशका; [9]महत्व।

आतिश— दागेदिलपर खैर गुजरी तो गनीमत जानिये ।
दुश्मने-जॉ है जो ऑखें देखती है सूये-दोस्त[1] ।।

शाद— तू बड़ा आकिल है नासेह ! तू ही समझा दे मुझे ।
कौन शै रह-रहके दिलको खीचती है सूये-दोस्त ।।

आतिश— दो मरेंगे जख्मेकारीसे तो हसरतसे हजार ।
चार तलवारोमें शल हो जायेगा बाजूये-दोस्त ।।

शाद— खत गलेपर पड चुका था खून देती थीं रगें ।
वायेहसरत किस जगह आकर थका बाजूये-दोस्त ।।

आतिश— फर्शेगुल बिस्तर था अपना खाकपर सोते है अब ।
खिश्त[2] जेरेसर नही, या तकिया था जानूये-दोस्त ।।

शाद— किस खुशीसे तहनयत दे-देके यूँ कहता है दिल ।
वस्लकी शब है मुबारक दोस्तको पहलूये-दोस्त ।।

आतिश—हिज्रकी शब हो गई रोजे-कयामतसे दराज[3] ।
दोशसे[4] नीचे नही उतरे अभी गेसूये-दोस्त ।।

शाद— दहरमे क्या-क्या हुए है इनकलाबातेअजीम ।
आस्मॉ बदला, जमी बदली, न बदली खूये-दोस्त[5] ।।

आतिश— इस बलाये-जॉसे 'आतिश' देखिये क्योकर बने ?
दिल सिवा शीशेसे नाजुक, दिलसे नाजुक खूये-दोस्त ।।

शाद— 'शाद' यूँही अहलेशक शकमें पड़े रह जायेंगे ।
हम इन्हीं ऑखोसे इक दिन देख लेंगे रूये-दोस्त ।।

---

[1]प्रेयसीकी तरफ; [2]ईंट; [3]लम्बी, [4]कन्धेसे; [5]मित्रका स्वभाव ।

आतिश— फुरकते-यारमें मुर्दा-सा पड़ा रहता हूँ।
रूह कालिबमें नहीं, जिस्म है तनहा बाकी ॥

शाद— मैकदेमें न वोह सागर है, न खुम है, न वोह जाम।
चल बसे यार, रहे हम तने-तनहा बाकी ॥

आतिश— इस कदर सीनयेगम, इश्कसे मामूर हुआ।
न रही दिलमें मेरे हसरतेदुनिया बाकी ॥

शाद— काश जीते युँ-ही मर-मरके कई बार ऐ दिल!
सैकड़ों साल रहेगी अभी दुनिया बाकी ॥

आतिश— गरमियाँ हैं जो यही आहेशरर-अफ़शाँकी[1]।
नही रहनेका मेरे यारका परदा बाकी ॥

शाद— चार दीवारे-अनासिरको[2] गिराया भी तो क्या?
वही धोका है, वही है अभी परदा बाक़ी ॥

आतिश—आशिक-नवाज़ हुस्नकी तारीफ क्या करूँ?
यूसुफसे भी अज़ीज उसे अपना गुलाम है ॥

शाद— मस्तोंपै मुनहसिर है न अहलेशऊरपर।
साकी! तेरा तमाम ज़माना गुलाम है ॥

आतिश— जबतक करे हलाल न मुझ बेगुनाहको।
कातिलको दहने हाथका खाना हराम है ॥

शाद— इतना भी मैकशोंको नही मैकशीमें होश।
हदसे अगर सिवा हो तो पीना हराम है ॥

---

[1] आहरूपी चिनगारीकी वारिश, [2] पचतत्त्वको।

आतिश— माशूक ही नही जो न वादा खिलाफ हो।
चाहे जो तुझसे पुख्तगीये-अहद[1] खाम[2] है॥

शाद— तेगे-निगाहेयार ! तेरी काट अलअमाँ।
फौलाद भी तो आगे तेरे मोम खाम है॥

आतिश— दौलतके सामने नही कुछ कद्रे-हुस्न भी।
महमूदका अयाज-सा खुशरू गुलाम है॥

शाद— कहते है किसको हुस्नकी खिदमत-गुजारियाँ।
जिस मुब्तलाको देखिये दिलका गुलाम है॥

आतिश— सुबहे बहार है मुझे साकी पिला शराब।
सब जानते है ईदका रोजा हराम है॥

शाद— इक जामकी बिसात तो साकी बहुत न थी।
पानी भी अब मुझे तेरे घरका हराम है॥

आतिश— 'आतिश' ! बुरा न मानिये हक-हक जो पूछिये।
शायर है हम, दरोग हमारा कलाम है॥

शाद— महमाँ सराये तनसे चली रूह कहके हाय—
"इस घरमें अब न आयेंगे गर 'शाद' नाम है॥"

हम तरही गजलोके अतिरिक्त इन दोनो वाकमाल उस्तादोके ऐसे अशआर भी वहुत अधिक है, जो विचारो और भावोकी दृष्टिसे समानता रखते है। उनमें-से चन्द अशआर पेश किये जा रहे है, ताकि पाठक जान सके कि एक ही तरहके भावो और विचारोको सिद्धहस्त शायर अपनी-अपनी भाषा और कल्पनाका परिधान पहिनाकर किस तरह सँवारते है।

---

[1]वायदेकी दृढता, [2]व्यर्थ।

आतिश— दस्ते-याराने-वतनसे[1] नहीं मिट्टी दरकार।
दब मरूँगा मैं कहीं, रीगे-बयाबाँके[2] तले॥

शाद— लबे-तिश्ना[3] रहना, अह्सॉसे बहतर।
देखा किया मुँह, दरिया हमारा॥
खुश हैं गर तिश्नालबीने यूँ-ही मारा हमको।
चीने-अबरू नही, दरियाकी गवारा हमको॥

आतिश— हमेशा झाड़ते हैं गर्देपैरहन[4] ग़ाफ़िल।
नही समझते कि है जेरेपैरहन[5] मिट्टी॥

शाद— शुस्तगीयेजबाँ[6] अबस,[7] दिलमे भरे हैं खारोखस[8]।
छोड़ अभी बरूनेदर,[9] फ़िक्रे दरूने-ख़ाना कर[10]॥

आतिश—आसमाँ! मरके तो राहत हो कही थोड़ी-सी।
पाँव फैलानेको हाथ आये जमी थोड़ी-सी॥

शाद— आरामसे हूँ कब्रके अन्दर जो बन्द हूँ।
मैं भी तो आदमी हूँ फरागत पसन्द हूँ॥

आतिश— मारफतमे तेरी जातेपाकके।
उडते है होशोहवास इदराकके[11]॥

शाद— तेरे कमालकी हद कब कोई बशर समझा।
उसी कदर उसे हैरत है जिस क़दर समझा॥

---

[1]देशवासी मित्रोके हाथसे, [2]रेगिस्तानकी धूलमे, [3]प्यासा; [4]पोशाककी धूल; [5]लिबासके नीचे; [6]वाणीकी मधुरता; [7]व्यर्थ; [8]काँटे, तिनके; [9]बाहरी झाड-पोंछ; [10]अन्तरंगकी; [11]बुद्धिके।

आतिश— दोनो जहाँके कामका रक्खा न इश्कने।
दुनिया-ओ-आख़रतसे किया बेख़बर मुझे॥

शाद— फलकका ज़िक्र ही क्या है, ज़मीके भी न रहे।
हम अपनी चालसे आख़िर कहीके भी न रहे।

आतिश— बीना[1] हो जो आँखे तो रुख़े यारको देखें।
नज्ज़ारेके क़ाबिल जो तमाशा है तो ये है॥

शाद— यह आरज़ू है तेरी जलवागाहमें जाकर।
हज़ार आँखे हो और सबसे यार हम देखें॥

आतिश— हश्रपर वादयेदीदार न कर आशिकसे।
किसको मालूम है, फरदायेकयामत[2] कब है॥

शाद— तकिय-ए-वादापै[3] सब चुपके पड़े है तहेख़ाक[4]।
कल कयामत जो न आई तो कयामत समझो॥

आतिश— ठहरा हुज़ूरेयार न माहे-चहार वोह।
दिन हो गया नकाब जो शबको उठा दिया॥

शाद— शबेवस्ल अपनी ही आँखोसे यह अन्धेर देखा है।
नकाब उनका उलटना रातका काफूर हो जाना॥

---

[1]देखनेवाली, [2]प्रलयका दिन, [3]वायदेके भरोसेपर; [4]मिट्टीके नीचे, समाधिमे।

आतिश— क़ालिबे-ख़ाकीको[1] तो सुनते हैं 'आतिश' ज़ेरेख़ाक।
कुछ नहीं मालूम हमको रूह[2] किस आलममें है॥

शाद—जिसे पाक रखनेकी थी हविस वोह तो तेरे दरपै पहुँच गई।
यह जो मुश्तेख़ाक जमीपै है, उसे फेंक आओ कहीं सही॥

आतिश— वक़्ते-आख़िर इश्क़े-पिन्हाँ, यारपर ज़ाहिर हुआ।
नज़अ़में ईसाने पहचाना मेरे आज़ारको॥

शाद— तुझीको नज़अ़मे पूछा तेरे ख़मोशोंने।
अख़ीर वक़्त जब आया छुपे न राज़[3] उनके॥

आतिश— हाथ क़ातिलका मेरे, ख़ंजर तक आकर रह गया।
कुहनियों तक आस्तीनोको चढाकर रह गया॥

शाद— हमारी जान सदक़े नौजवाँ क़ातिलके गुस्सेपर।
कोई अन्दाज़ देखे आस्तीनोके चढ़ानेका॥

आतिश— छेड़ बैठे जो हम अफसानये-गेसूये-दराज़।
सुबह होगी न रहेगी शबे-यल्दा[4] बाक़ी॥

शाद—जो कहूँ तो ख़त्म न हो सके, जो सुने कोई तो ख़लिश रहे।
यह फसाना ज़ुल्फे-दराज़का मेरी ज़िन्दगीसे दराज़[5] है॥

---

[1]मिट्टीरूपी शरीरकी; [2]आत्मा, [3]भेद, [4]सबसे बड़ी अँधेरी रात; [5]लम्बा, विस्तृत।

आतिश— अदमसे हस्तीमें जाकर यही कहूँगा मैं।
हज़ारो हसरतेज़िन्दाको गाड़-ओ-दाब आया ॥

शाद—अभी बहुत दिलमें हैं उम्मीदें तडपके हसरतसे मर न जायें।
मिलो अगर 'शाद'से अजीज़ो! तो ज़िक्र करना न आरज़ूका ॥

आतिश— चमनिस्तॉकी गई नशवोनुमा फिरती है।
रुत बदलती है, कोई दिनमें हवा फिरती है ॥

शाद— खिज़ाँमें खुश्क शाखोंसे लिपटकर मुफ़्त जी खोना।
बहार आयेगी घबराओ न ऐ उजड़े चमनवालो!

आतिश— आलमसे कुछ गरज नही ऐ जाने जाँ! हमें।
दिलको नहीं है कोई तुम्हारे सिवा कुबूल ॥

शाद— हज़ार मजमये-ख़ूबाने-माहरू[1] होगा।
निगाह जिसपै ठहर जायगी वह तू होगा ॥

आतिश— कहाँतक आँखोंमें सुर्ख़ी शराबख़्वारीसे।
सफेदमू[2] हुए बाज़ आ सियाहकारीसे ॥

शाद— अब इज्तनाब[3] मुनासिब है 'शाद' रिन्दीसे।
सफेद आपके दाढ़ीके बाल होने लगे ॥

---

[1]सुन्दरियोंका समूह; [2]सफेद बाल, [3]परहेज़, बचाव।

आतिश—राज़ेदिल[1] अफ़शाँ[2] न हो ऐ दिल ! कहे देता हूँ मैं।
फोड़ डाली आँख अगर आँसू नज़र आया मुझे ॥

शाद— हुजूमे-अश्कसे दीदारमें ख़लल न पड़े।
जो अबके रोऊँ तो आँखोंको मैंने फोड़ दिया ॥

आतिश— नाफ़हमी[3] अपनी परदा है दीदारके लिए।
वरना कोई नकाब नही यारके लिए ॥

शाद— गिला जलवेका तेरे क्या कि आलम आशकारा है।
हमें रोना तो जो कुछ है वोह अपनी कमनिगाहीका ॥

आतिश— ख़ूब रोये हालपर अपने, वतनका सुनके हाल।
कोई गुरबतमें जो आ निकला हमारे शहरसे ॥

शाद— चमनको याद करके देरतक आँसू वहाता हूँ।
कोई तिनका जो मिल जाता है उजड़े आशियानेका ॥

आतिश— करम किया जो सनमने सितम ज़ियादा किया।
शबे-फ़िराक़में मैंने ख़ुदाको याद किया ॥

शाद— कोई ख़फ़ा हो-तो-हो, अमरेहक़ मगर यूँ है।
बुतोंकी चालने सबको ख़ुदापरस्त किया ॥

---

[1]दिलका भेद, [2]प्रकट, [3]बेसमझी, अज्ञानता।

आतिश— हिमेशा फ़क्रसे याँ आशिकाना शेर ढलते हैं।
जबाँको अपनी बस इक हुस्नका अफसाना आता है ।।

शाद— न आईनेका किस्सा और न हालेशाना कहते हैं।
हक़ीकतमें जमाले-यारका अफसाना कहते हैं ।।

आतिश— हिकायते-गुले-रगीने-यार क्या कहते ?
चमनको आग लगाता जो बागबाँ सुनता !

शाद— जमालेयारका किस्सा चमनमें चलके कहो।
गुलोंके कान खडे होंगे उस हिकायतसे ।।

---

२४ मई १९५३]

गुल-बुलबुल
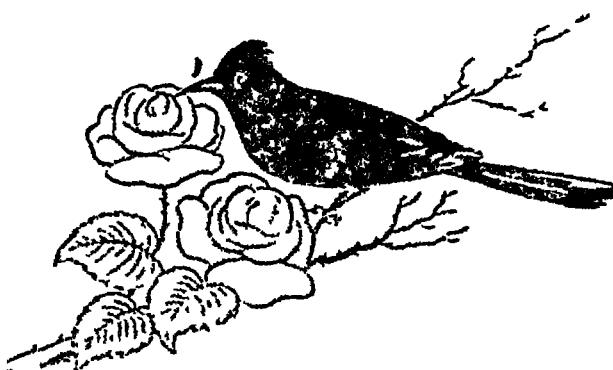
पं० अमरनाथ मदन साहब 'साहिर' काश्मीरी ब्राह्मणथे। आपका जन्म २९ मार्च १८६३ ई०मे और निधन १९४५ ई० के लगभग हुआ। आप देहलीके रईस रायबहादुर प० जानकीदास मदनके सुपुत्र थे। आपके पूर्वज प० दीनानाथजी पजाबके महाराजा रणजीतसिंहके दीवान और ताऊ अग्रेजी फौजमे सूबेदार थे।

'साहिर' साहब तहसीलदारीके पदसे सम्मानपूर्वक पेशन लेकर दिल्लीमे साहित्य-सेवामे जीवन-यापन करते रहे। अपने मकानपर नियमसे मासिक मुशायरे कराते रहते थे और बडी धूम-धामसे वार्षिक मुशायरे वृहतरूपमे कराते थे। मैने स्वयं सन् १९२४से दसो वार्षिक और न जाने कितने मासिक मुशायरे आपके सचालकत्त्वमे सफलतापूर्वक सम्पन्न होते देखे है। उर्दू-ससारमे आपको अत्यन्त सम्मान और आदर प्राप्त था। आप हँसमुख, मिलनसार और प्रतिष्ठित व्यक्ति थे, चेहरेपर सफेद दाढ़ी खूब जेब देती थी।

पहले आप फारसीमे शेर कहते थे, बादमे मित्रोके आग्रहसे २२ वर्षकी आयुसे उर्दूमें शेर कहना आरम्भ कर दिया। आपका १९३७ ई०मे एक दीवान "कुफ्रेइश्क" प्रकाशित हो चुका है। आपका कलाम उच्चकोटिका

दार्शनिक और आध्यात्मिक है। भाषा भी फारसीमय है। गद्यके भी आप मशहूर लेखक थे। यहाँ हम आपके कुछ सरल अशआर निगार जनवरी १९४१ से देनेका प्रयत्न कर रहे हैं—

चश्मे-दिल नज़अ़में है महवे तमाशाये-जमाल[1]।
हश्र[2] क्या और है उससे कोई बहतर अपना॥

होनेको तो है अब भी वही हुस्न, वही इश्क।
जो हर्फे-गलत होके मिटा नक्शे-वफा था॥

पिन्हाँ नज़रसे परदयेदिलमें रहा वोह शोख।
क्या इम्तयाज़[3] हो मुझे हिज्रो-विसालका॥

ऐ परीरू ! तेरे दीवानेका ईमाँ क्या है।
इक निगाहे-गलत अन्दाज़पै कुर्बां होना॥

जुनूने-इश्कमें कब तन-बदनका होश रहता है।
बढ़ा जब जोशे-सौदा हमने सरको दर्दे-सर जाना॥

एक जज्बा था अज़लसे गोशये-दिलमें निहाँ।
इश्कको इस हुस्नके बाजारने रुसवा किया॥

तमन्नायें बर आईं अपनी तर्केमुद्दआ होकर।
हुआ दिल बेतमन्ना अब, रहा मतलबसे क्या मतलब?

देखकर आईना कहते हैं कि—"लासानी हूँ मैं"
आईना देता है उनको लनतरानीका जवाब॥

पा लिया आपको अब कोई तमन्ना न रही।
बेतलब मुझको जो मिलना था मिला आपसे आप॥

---

[1]मृत्युके समय हृदय-नेत्र प्रेयसीके सौन्दर्य देखनेमे लीन है; [2]प्रलय, [3]अन्तर मालूम दे।

गुम कर दिया है आलमे-हस्तीमें होशको।
हर इकसे पूछता हूँ कि 'साहिर' कहाँ है आज ॥

दामानेयार मरके भी छूटा न हाथसे।
उट्ठे हैं ख़ाक होके सरे रहगुजरसे हम।

सदाये-वस्ल बामे-अर्शसे आती है कानोंमें—
"मुहब्बतके मजे इस दारपर चढकर निकलते हैं॥"

कतरा दरिया है अगर अपनी हकीकत जाने।
खोये जाते हैं जो हम आपको पा जाते हैं॥

कहाँ दैरोहरममें जलवये-साक़ी-ओ-मय बाकी ?
चलें मयख़ानेमे और बैअते-पीरेमुगां[1] कर लें॥

परेपरवाज़े उनका[2] लायेगे गर लामकाँ भी हो।
तुम्हे हम ढूँढ लायेगे कही भी हो, जहाँ भी हो॥

हुस्न क्या हुस्न है जलवा जिसे दरकार न हो।
यूसफी क्या है जो हंगामये-बाजार न हो॥

वेतमन्नाईने वरहम रंगे-महफ़िल कर दिया।
दिलकी बज्म-आराइयाँ थी आरज़ूये-दिलके साथ॥

अजलसे दिल है महवेनाज वक़्फे-ख़ुद-फ़रामोशी।
जो बेख़ुद हो वोह क्या जाने, वफा क्या है, जफा क्या है ?

परदा पड़ा हुआ था गफलतका चश्मे-दिलपर।
आँखें खुली तो देखा आलममें तू-ही-तू है॥

---

[1]शराब बेचनेवालेपर ईमान ले आये, [2]कल्पित पक्षी।

जलवये-हक़ नज़र आता है सनममें 'साहिर' !
है मेरे काबेकी तामीर सनम-ख़ानोसे ।।

हुस्नमें और इश्कमें जब राब्ता कायम हुआ ।
गम बना दिलके लिए और दिल बना मेरे लिए ।।

वोह भी आलम था कि तू-ही-था और कोई न था ।
अब यह कैफीयत है मैं-ही-मैंका है सौदा मुझे ।।

हुस्नको इश्कसे बेपरदा बना देते है वोह ।
वोह जो पिन्दारे-ख़ुदी[1] दिलसे मिटा देते हैं ।।

ख़ाली हाथ आयेंगे और जायेंगे भी खाली हाथ ।
मुफ़्तकी सैर है, क्या लेते हैं, क्या देते हैं ।।

जिन्दगीमें है मौतका नक़्शा ।
जिसको हम इन्तज़ार कहते हैं ।।

दीदारे-शशजहत[2] है कोई दीदावर[3] तो हो ।
जलवा कहाँ नही, कोई अहलेनज़र तो हो ।।

दरेसनमकदाको हमने जाके खड़काया ।
हरममें जब न हुए बारयाब, क्या करते ?

हरम है मोमिनोका, बुतपरस्तोका सनमख़ाना ।
ख़ुदा-साज इक इमारत है मेरे पहलूमें जो दिल है ।।

---

[1]अहमका अभिमान, [2]अखिलविश्वके दर्शन;
[3]देखनेवाला ।

चले जो होशसे हम बेखुदीकी मंज़िलमें।
मिला वोह ज़ौके-नजर, पर उधर न देख सके ॥

हम हैं और बेखुदी-ओ-बेख़बरी।
अब न रिन्दी न पारसाई है ॥

९ मई १९५२]

दत्तात्रय 'कैफी'

[१८६६—.. ....ई०]

पं० बृजमोहन दत्तात्रय कैफी काश्मीरी ब्राह्मण है। आपके पूर्वज फरुखसियर बादशाहके साथ काश्मीरसे दिल्ली आये और सरकारी दफ्तरोमे उच्च पदोपर नियुक्त हुए। कैफीके पिता प० कन्हैयालाल नाभा स्टेटमे शहर कोतवाल थे।

अल्लामा कैफी १३ दिसम्बर १८६६ ई०मे दिल्लीमे उत्पन्न हुए। आपके नाना फारसीके बहुत बडे पण्डित थे। उन्हीसे फारसीकी शिक्षा प्राप्त की। अग्रेजी शिक्षा मिशन कॉलेजमे प्राप्त की। शायरीका प्रारम्भ गज़लसे हुआ, परन्तु हाली-आजादके आन्दोलनोके फलस्वरूप आपने नज्म भी लिखनी प्रारम्भ कर दी।

१९१५-१६मे यूरोपका भ्रमण करके वहाँके साहित्यिकोसे भेट-मुलाकात की। आपकी कई कृतियाँ सरकारसे पुरस्कृत हो चुकी है। आप काश्मीरके विदेशी विभागके उपमत्री पदसे रिटायर हुए और एक रियासतमे मजिस्ट्रेट और कलेक्टर भी रहे। अब शान्तिपूर्वक साहित्य-सृजन कर रहे है। आप उर्दू-साहित्य-इतिहासके बहुत प्रतिष्ठित विद्वान है। आपकी आलोचनाये बहुत गवेषणापूर्ण होती है। आप उर्दू-ससारके एक स्तम्भ

समझे जाते हैं। सैकडो मुशायरो और साहित्यिक सभाओके आप सभापति होते रहे है। आपका उर्दू-साहित्यिक बहुत सम्मान करते हैं। न जाने कितने युवक आपसे प्रेरणा पाकर शायर और लेखक बन गये। विरोधी भी आपकी विद्वता और साहित्यिक सेवाओका लोहा मानते है और आपके दमको उर्दूके लिए एक बहुत बडी देन समझते है। हिन्दी-हितैषीके नाते जो स्थान आदरणीय पुरुषोत्तमदास टण्डनका है, वही उर्दू-ससारमे आपका है। सादा-मिज़ाज, साफ-दिल और बा-इख़लाक बुज़ुर्ग है। सभी आपको श्रद्धा भक्तिसे देखते है। दिल्लीकी बडी-से-बडी बज्मेअदबका सभापति होते हुए हमने आपको देखा है। आपके एक-एक शब्दको लोग मत्रकी तरह समझते है।

'कैफी' बूढे हो चले है और उनकी शायरी भी बूढी हो गई है। लेकिन उनके कलाममे न तो पुराने ढगकी शोख़ी मिलेगी, न बाजारूपन। उनका कलाम सजीदा और पाक होता है। निगार जनवरी १९४१ से चन्द अशआर चुनकर यहाँ दिये जा रहे है—

है मेरे दिलमें वोह आहे कि जो बिजली न बनी।
मेरी आँखोमें वोह कतरा है जो तूफाँ न हुआ॥

गम रहा उनका जो दोज़ख़में पडे जलते है।
मेरे ख़ुश होनेका जन्नतमे भी सामाँ न हुआ॥

राज़[1] उनके खुले जाते है एक-एक सभूपर।
और इसपै तमाशा है कि मै कुछ नही कहता॥

हाल यह बेख़ुदिये-इश्कमें[2] 'कैफी'का हुआ।
शेख़ काफ़िर उसे और गबर[3] मुसलमाँ समझा॥

---

[1]भेद; [2]प्रेमकी तन्मयतामे, [3]अग्निपूजक (यहाँ गैरमुस्लिमसे तात्पर्य है)।

यूँ अगर देखिये क्या कुछ नही यह मुश्तेगुबार[1] ।
और अगर सोचिये तो खाक भी इन्सॉमें नही ।।

चारागरको हैरत है इरतकाये-वहशतसे ।
पाँवमे जो चक्कर था आ रहा है वोह सरमे ।।

सुहबतें अगली जो याद आती है, जी कटता है ।
कोई पूछे भी तो कहते है, हमें याद नही ।।

हॉ-हॉ मगर ऐ दोस्त ! तू तदबीर किये जा ।
यह भी तेरी तकदीरके दफ्तरमे लिखा है ।।

गुले-पजमुर्दाकी बिखरी हुई कुछ पत्तियॉ देखी ।
तो इक बेदिल यह चीख उट्ठा "मेरा दिल है, मेरा दिल है ।।"

तुमसे अब क्या कहे, वोह चीज है दागे-गमे-इश्क ।
कि छुपाये न छुपे और दिखाये न बने ।।
बात वोह कह गये आये भी तो किस तरह यकीं ।
और सहर इसमें कुछ ऐसा कि भुलाये न बनें ।।

जिसको खबर नही, उसे जोशो-खरोश है ।
जो पा गया है राज, वोह गुम है, खमोश है ।।

पैकरे-खाक है तू चर्खपै छा मिस्ले-गुबार ।
तुझको मिट्टीमे मिलाया है जबी-साईने ।।

नही मालूम अजॉ थी कि वोह बॉगेनाकूस[2] ।
कहीं खींचे लिये जाती है इक आवाज मुझे ।।
"इनकलाब आनेको ऐसा है न आया हो कभी ।।"
दरो-दीवारसे आती है यह आवाज मुझे ।।

---

[1]मुट्ठीभर खाक; [2]शख-ध्वनि ।

जो जिन्दादिल हैं हमेशा जवान रहते हैं।
बहारे-जीस्त यकीनन इसी शबाबमें हैं॥

हम तो बुरे बने युँ ही नालेसे आहसे।
दिलमें जो था वोह फूट ही निकला निगाहसे॥
आबाद है यह खानयेदिल इक ख़यालसे।
दुनियाके हादसे इसे वीरॉं न कर सके॥

साक़ीकी इक नज़र ही हमें मस्त कर गई।
किसको सुराही-ओ ख़ुमो-सागरका होश था॥

१६ मई १९५२]

'आज़ाद' अन्सारी

[१८७० —....ई०]

शेख अल्ताफ अहमद 'आजाद' अन्सारीका जन्म १८७० ई०मे नागपुरमे हुआ। वहाँ आपके पिता ओवरसियर थे। १८-१६ वर्षकी अवस्थातक अरवी-फारसीकी शिक्षा प्राप्त की। १६०० ई०मे देहरादूनमे मकतब खोला। १६०२से १६०६ तक कानपुरमे हकीमी की। यही आपकी पत्नीका निधन हो गया। फिर आप सहारनपुर, अम्वाला, अलीगढ, दिल्ली, आदि कई स्थानोमे रहे। १६२३के बाद आप हैदराबाद चले गये और वहाँ चश्मेका व्यापार करने लगे। आप शायरीमे हालीके शिष्य थे। आप पुन दिल्लीमे रहने लगे थे। यूँ आप सहारनपुरके रहनेवाले थे। १८६०मे आपने शायरी प्रारम्भ की और २० वर्षतक हालीकी सुहबतका लाभ उठाया। आपका निधन हो चुका है। आपके स्वय निर्वाचित कलामसे चन्द शेर हम यहाँ निगार जनवरी १६४१ से साभार दे रहे हैं—

तबीयत ही दर्द-आश्ना हो गई।
दवाका न करना दवा हो गया॥

यूँ याद आओगे हमे इसला[1] ख़बर न थी।
यूँ भूल जाओगे हमे वह्मो-गुमाँ न था॥

आह ! किसने मुझे दुनियासे मिटाना चाहा।
आह ! उसने, जिसे मैं हासिले-दुनिया जाना॥

ज़ाहिर है कि बेकस हूँ, साबित है कि बेबस हूँ।
जो ज़ुल्म किया होगा, बरदाश्त किया होगा॥

उम्मीदे-सर्क रुख़सत, तस्कीने-दरूँ रुखसत।
अब दर्दकी बारी है, अब दर्द मजा देगा॥

कभी दिनरात रगी सुहबतें थी।
अब आँखे है, लहू है, और मै हूँ॥

तेरा गुलशन वोह गुलशन, जिसपै जन्नतकी फिज़ा सदके।
मेरा ख़िरमन[2] वह ख़िरमन, जिसपर अगारे बरसते है॥

अब आँखोके आगे वोह जलवे कहाँ ?
अब आँखें उठानेसे क्या फायदा ?

अब फरेबे-मह्र्बानी[3] रायगाँ[4]।
जिन्दगी भरको नसीहत हो गई॥

जब हमे बज़्ममें आनेकी इजाजत न रही।
फिर यह क्यों पुरसिशेहालात है ? यह भी न सही॥

---

[1]कदापि, [2]खलिहान, [3]कृपाओका मायाजाल; [4]व्यर्थ।

अब हालेदिल न पूछ, कि ताबे-बयाँ[1] कहाँ ?
अब महर्बाँ न हो कि ज़रूरत नहीं रही ॥

तेरा बारेगिरानें-महर्बानी कौन उठा सकता ?
तेरा नामहर्बाँ होना कमाले-महर्बानी है ॥

सितमशआ़र ! सता, लेकिन इस कदर न सता ।
कि शुक्र शक्ले-शिकायात अख़्तयार करे ॥
ख़ुदाके वास्ते आ और इससे पहले आ ।
कि यास चारये-तक़लीफेइन्तज़ार करे ॥

हाय ! वोह राहत कि जबतक दिल कहीं आया न था ।
हाय ! वोह साअ़त कि जब तुमसे शनासाई हुई ॥

मेरे शौक़ेसज़ाका ख़ौफनाक अंजाम तो देखो ।
किसीका ज़ुर्म हो अपनी ख़ता मालूम होती है ॥

समझता हूँ कि तुम बेदादगर हो !
मगर फिर दाद लेनी है तुम्हींसे ॥

इक गदायेराहको[2] नाहक न छेड़ ।
जा, फकीरोंसे मज़ाक अच्छा नहीं ॥

तेरा अदील[3] कोई तेरे सिवा न होगा ।
तुझ-सा कहाँसे लाऊँ, तुझ-सा हुआ न होगा ॥
मंजिलकी जुस्तजूसे पहले किसे ख़बर थी ?
रस्तोंके बीच होंगे और रहनुमा[4] न होगा ॥

---

[1]बयान करनेकी शक्ति, [2]मार्गके भिक्षुकको; [3]नज़ीर, तुझ जैसा, [4]पथ-प्रदर्शक ।

हक बना, बातिल बना, नाकिस बना, कामिल बना।
जो बनाना हो बना, लेकिन किसी काबिल बना॥

ज़बाँ तक शिकवये-महरूमिये-दीदार आना था।
ख़िताब आया कि "जा, और ताकते-दीदार पैदा कर॥"

गैर फानी खुशी अता कर दी।
ऐ गमेदोस्त! तेरी उम्रदराज॥

उठो दर्दकी जुस्तजू करके देखे।
तलाशे-सकूने तबीयत कहाँ तक?

दीदारकी तलबके तरीकोसे बेख़बर।
दीदारकी तलब है तो पहले निगाह माँग॥

जो चाहना है चाह मगर कायदेके साथ।
जो माँगना है माँग मगर राह-राह माँग॥

निशानेराह हाथ आया तो किससे? सिर्फ उल्फतसे।
कमाले-रहबरी पाया तो किसमें? सिर्फ रहज़नमें॥

आओ, फिर मौका है, कुछ इसरारकी बातें करें?
सूरते-मन्सूर बहकें, दारकी बातें करें॥

बयाने-राजेदिलकी ख्वाहिशें और वोह भी मिम्बर पर?
ख़बर भी है? यह बातें दारपर कहनेकी बातें हैं॥

कोई दोनों जहाँसे हाथ उठा बैठा तो क्या परवा?
तुम इन मोलों भी सस्ते हो, तुम इन दामो भी अरज़ाँ हो॥

दिल और तेरे ख़यालसे राहत न पा सके।
शायद मेरे नसीबमें राहत नहीं रही॥

इसे भी खुश नजर आया, उसे भी खुश नजर आया।
तेरे गममें ब-हाले शादमॉ कर दी बसर मैंने ॥

मुनासिब हो तो अब परदा उठाकर।
हमारा शक बदल डालो यकीसे ॥

बेख़बर! कारेख़बर मुश्किल नही।
बेख़बर हो जा, ख़बर हो जायगी ॥

जो वोह मिलता नही है आप खो जा।
कि इक यह भी तरीके-जुस्तजू है ॥

तेरे होते मेरी हस्तीका क्या जिक्र?
यही कहना बजा है "मै नहीं हूँ" ॥

आज वोह दिन है कि इक साकीके दस्ते-ख़ाससे।
पी और इतनी पी कि मै हक़दारे-कौसर हो गया ॥

याराए-ज़ुहदो-ताबदिरअ़ कुछ तलब न कर।
तौफीक हो तो सिर्फ मजाले-गुनाह माँग ॥

जो अहलेहरम दरपये-दुश्मनी है।
तो परवा नही, आस्ताँ और भी है ॥

आ, मगर इस कदर करीब न आ।
कि तमाशा मुहाल हो जाये ॥

जब रुख़ेमकसदसे इक परदा उठा।
और ला-तादाद परदे पड़ गये ॥

अचानक नजूले-बला[1] हो गया।
यकायक तेरा सामना हो गया॥

इन्सानकी बदबख्ती अन्दाजसे बाहर है।
कम्बख्त खुदा होकर बन्दा नजर आता है॥

बन्दापरवर ! मैं वोह बन्दा हूँ कि बहरे-बन्दगी।
जिसके आगे सर झुका दूँगा खुदा हो जायगा॥

२४ मई १९५२ ई०]

आबिद

---
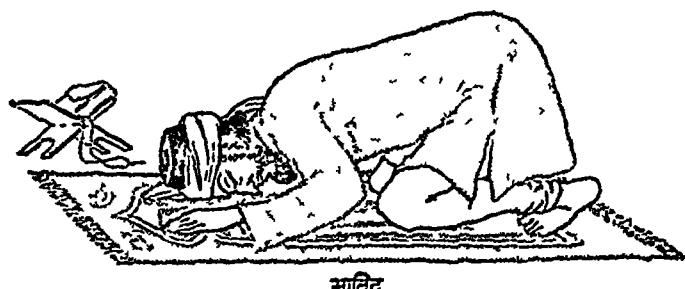
[1]आपदाका आगमन।

सैयद फजलुलहसन 'हसरत' उन्नाव जिलेके मोहाना कसबेमे १८७५ई० मे उत्पन्न हुए, और १९०३ ई०मे आपने अलीगढ मुस्लिम यूनिवर्सिटीसे बी० ए० पास किया।

'हसरत' कट्टर और धार्मिक मुसलमान थे। नमाज और रोजेके सख्त पावन्द थे। ओलियाओके[1] मुरीद थे। फिरगी महल लखनऊके पीरे-खानकाहके हाथपर आप बैत[2] कर चुके थे, और इतनी श्रद्धा-भक्ति रखते थे कि अपने अन्तिम दिनोमे आप फिरगी महल आ गये थे। यही ता० १३ मई १९५१को आपकी मृत्यु हुई। मृत्युसे पहले आपने केवल यही अभिलाषा प्रकट की, कि आपका भी प्रतिवर्ष पीरे-खानकाहके साथ उर्स[3] किया जाय। आप अरसेसे प्रतिवर्ष हज-यात्राको भी जाया करते थे। किसी भी किस्मका नशा नही करते थे, यहाँतक कि तम्वाकूसे भी परहेज था।

मुसलमानोके हितके लिए जीना और मरना जीवनका मुख्य ध्येय समझते थे। इस्लामके लिए आपके हृदयमे दहकती हुई ज्वाला थी,

---

[1]पहुँचे हुए फकीरोके, [2]ईमान ला चुके थे, उनके भक्त हो गये थे। [3]समाधि पर धार्मिक गायन आदि।

जिसे आप तमाम उम्र सुलगाये रहे, बडी-से-बड़ी मुसीबतोके छीटे उसे कभी बुझा नही सके।

भारतकी बागडोर अग्रेज़ोने मुस्लिम शासकोसे छीनी थी। अत. आप अग्रेजी-राज्यके कट्टर विरोधी थे। यह वह युग था जब कि भारतके मुसलमान नवाब और रईस अग्रेजोकी चाटुकारितामे ही बडप्पन समझते थे, और सर सैयदके आन्दोलनके फलस्वरूप जी हुजूरी मुसलमानोमे व्याप गई थी। अग्रेजोके विरुद्ध बोलने और लिखनेकी स्वप्नमे भी कल्पना मुसलमानोसे नही की जा सकती थी। 'हसरत' उस समय भी अग्रेजोके पाँव भारतसे उखाडनेके स्वप्न देखने लगे थे।

उन दिनो लोकमान्य तिलक स्वराज्य-आन्दोलन बहुत सरगर्मीसे चला रहे थे। शत्रुका शत्रु अपना मित्र होता है, इसी नीतिके अनुसार 'हसरत' लोकमान्य तिलककी नीतिके समर्थक हो गये। शिक्षा समाप्त करते ही नौकरी आदिके चक्करमे न पडकर आपने साहित्य और राजनैतिक विचारोसे ओत-प्रोत 'उर्दूए-मोअल्ला' मासिक पत्र १९०४ ई०मे अलीगढसे निकालना प्रारम्भ कर दिया।

'हसरत' जैसे निर्धन युवकके लिए पत्र-प्रकाशन करना कण्टकाकीर्ण मार्गपर चलना था, परन्तु इरादेके मज़बूत और धुनके पक्के 'हसरत'को विचलित करनेका साहस किसमे था? उर्दूए-मुअल्ला बडे आबोताबसे प्रकाशित हुआ और बडे धडल्लेसे चलता रहा। साहित्यिक और राजनैतिक गगा-जमुनी दोनो विचार धाराये निर्बाध गतिसे बहती रही। १९०४ ई०मे आप पहलीबार प्रतिनिधिकी हैसियतसे काग्रेस-अधिवेशनमे भी सम्मिलित हुए।

१९०८ ई०मे एक सज्जनका टर्कीके सम्बन्धमे एक ऐसा लेख 'उर्दूए-मोअ़ल्ला'मे प्रकाशित हो गया, जो अग्रेज़ सरकारकी दृष्टिमें ग़ैर क़ानूनी था। ऐसे विद्रोहको अलीगढ यूनिवर्सिटीके कर्त्ता-धर्त्ता कैसे बर्दाश्त कर सकते थे? उन्होने जी खोलकर 'हसरत'के विरुद्ध गवाहियाँ दी।

फलस्वरूप आप दो वर्षको जेल भेज दिये गये। मगर चरित्रकी दृढता देखिये कि मजबूर किये जानेपर भी आपने वास्तविक लेखकका नाम नही बताया ओर सारी ज़िम्मेवारी अपने ऊपर ओढ ली।

जेल जानेका तो आपको मलाल नही हुआ, क्योकि जिस मार्गपर आप चल निकले थे, उसमे ऐसा पडाव आना लाजिमी था। मगर बेहद कलक पुलिसकी इस हरकतसे हुआ कि उसने आपके सामने ही पुस्तकोका बहुत बडा सग्रह फूँक दिया। जिसमे बहुत-से हस्तलिखित दीवान भी थे। जेलमे आपको बीस सेर गेहूँ रोजाना पीसने पडते थे। उसी जमानेमे आपने यह शेर कहा था—

है मश्के-सुख़न जारी, चक्कीकी मशक़्क़त भी।
इक तुरफा तमाशा है, 'हसरत'की तबीयत भी॥

रमजानका महीना आया तो रोजे तो रखे, मगर जेलमे न रोजे अख्तियार करनेके, न खोलनेके खाद्य पदार्थ थे।

कट गया कैदमें माहे-रमजाँ भी 'हसरत'!
गरचे सामान सहरका[1] था न इफतारीका[2]॥

स्वदेशी आन्दोलनके आप प्रबल समर्थक थे। भूलकर भी विदेशी वस्त्रका उपयोग नही करते थे। एक बार किसीके यहाँ आप मेहमान हुए तो मेजबानने आपके पलगपर ओढनेके लिए विदेशी कम्बल रख दिया। अत आप उस जाडेकी रातमे बगैर ओढे ही पडे रहे।

प्रथम महायुद्धमे टर्की, जरमनीके साथ था। अत भारतके मुसलमानो-की सहानुभूति जरमनके साथ थी। विद्रोहकी आशकाके कारण अग्रेजोने कुछ भारतीय मुसलमानोको नजरबन्द कर दिया था। 'हसरत' भी उनमे-से

---

[1]वे खानेकी चीजे, जिन्हे खानेके बाद सुबह रोजा अख्तियार किया जाता है, [2]वे खानेकी चीज़े, जिनसे रोजा शामको खोला जाता है।

एक थे। आप लड़ाई समाप्त होनेके बाद छोडे गये। फिर काग्रेस और खिलाफतका गठ-बन्धन हो जानेपर असहयोग आन्दोलनमे आप जेल गये और कुछ दिनो वडे सरगर्म कार्य-कर्त्ता रहे, किन्तु साम्प्रदायिक मनोवृत्ति होनेके कारण आप १९२४के हिन्दू-मुस्लिम-सघर्षके वाद सदैव-को देशोपयोगी कार्योसे पृथक हो गये और मुस्लिमलीग-जैसी साम्प्रदायिक सस्थासे रिश्ता जोड लिया। आप मुस्लिमलीगके टिकटपर ससदके सदस्य निर्वाचित हुए। पाकिस्तानी आन्दोलनके पक्के हिमायती थे। लेकिन भारत-विभाजन होनेके बाद आप पाकिस्तान न जाकर भारतमे ही रहे, और निर्भीक होकर मुसलमानोके हितोमे विचार व्यक्त करते रहे।

आप स्वभावत: उग्रविचारक और विद्रोही स्वभावके थे। पढते समय यूनिवर्सिटीमे, काग्रेसमे, मुस्लिमलीगमे, ससदमे, हर जगह विद्रोहका झण्डा बुलन्द रखते थे। यहाँतक कि पाकिस्तानके प्रवल अग होते हुए भी आपकी मि० जिन्नासे पटरी नही वैठती थी। यही कारण है कि आप राजनैतिक क्षेत्रमे केवल योद्धा बने रहे, सचालन-सूत्र आप कभी हस्तगत नही कर सके।

'हसरत'के राजनैतिक विचारोसे लोगोको मतभेद हो सकता है, लेकिन उनकी शायराना अज़मत और मानवताको सभी आदर और सराहनाकी दृष्टिसे देखते है। शायरीमे जो उनका स्थान है, उसका परिचय तो आगे मिलेगा ही, परन्तु उन्होने प्राचीन शायरोका चुना हुआ कलाम पचासो भागोमे प्रकाशित किया। जिससे उन शायरोका कलाम नष्ट होनेसे वच गया। यदि 'हसरत' शायर न भी होते तो भी यही एक कार्य उनकी ख्यातिके लिए वहुत वडा कार्य था।

साहित्यिक होनेके अतिरिक्त हसरत वहुत अच्छे इन्सान थे। जिससे जो सम्वन्ध एक वार हो गया, उसे जीवनभर निभाया। वहुत खुश-मिजाज, सुल्ह-कुल और सादा वजअ-कनअके वुजुर्ग थे। शेरवानी, तुर्की टोपी,

शरई पायजामा उनका मखसूस लिबास था। दूरका चश्मा लगाते थे। पढते वक्त चश्मा उतार लेते थे। कद छोटा, रग साफ, आँखे बडी, चेहरे-पर चेचकके दाग, आवाज़ बारीक। भारत-विभाजनके बाद कुछ उर्दू पुस्तकोकी तलाशमे मै दिल्ली गया था कि वही आपके दर्शन हो गये। बहुत अखलाक और मुहब्बतसे पेश आये। मेरे यह निवेदन करनेपर कि मै आपका कलाम चयन कर रहा हूँ, मगर चाहता हूँ कि एक अपना शेर अपने दस्तेमुवारकसे डायरीमे लिख दे, आपने सहर्ष यह शेर लिख दिया—

पढिये इसके सिवा न कोई सबक।
"खिदमते-खल्क[1]-ओ-इश्के-हज़रते-हक[2]॥"

डायरीको पढता हूँ और सोचता हूँ कि 'हसरत' तो चले गये, मगर कितनी बडी नसीहत अता फर्मा गये—

खिदमते-खल्क़-ओ-इश्के-हज़रते-हक

१३ मई १९५१को ७५ वर्षकी आयुमे आपका निधन हो गया, और अनवरवागमे अपने पीरेमुर्शिदके पास आपको समाधि मिली।

हसरतकी शायरी—

'हसरत' सिर्फ गजलगो शायर थे, और यही उनकी सबसे बडी विशे-षता है। न तो वे कभी आध्यात्मिक रूपी तत्त्व-चर्चाओमे उलझे, न कभी दार्शनिक गुत्थियोको सुलझानेका प्रयत्न किया। उन्होने केवल वही बोल बोले जो उनके जीवनसे सम्बन्धित थे।

हसरतको जो ख्याति और सर्वप्रियता मिली, वह बहुत कम लोगोको

---

[1]ससार-सेवा, [2]सत्यसे प्रेम।

नसीव होती है। जिन शायरोने मृत्युशैयापर छटपटाती गजलमे जीवन सचार करके उसे दर्शनीय और गौरवपूर्ण बनाया, उनमे-से एक आप भी है।

'हसरत'का शायरीमे न तो कोई प्रतिद्वन्द्वी था, न उन्हे कभी अपने समकालीन शायरोसे तू-तू, मैं-मैंसे वास्ता पडा। वे छोटोसे आदर और बड़ोसे सदैव स्नेह पाते रहे। उनका शायराना रग और व्यक्तित्व दोनो ही उच्च थे।

'हसरत'की शायरीमे कृत्रिमता नही, स्वय उनके जीवनके अनुभव है। उर्दूशायरीमे यह एक वहुत बडा दोष पाया जाता है कि वह वास्तविकतासे कोसो दूर है। जिन शायरोने कूचये-इश्कमे कभी कदम नही रखा, जो नही जानते कि आँख लगनेसे कैसी पीडा होती है, वे भी अपनी शायरीमे मजनूँ और फरहादके उस्ताद नज़र आते है। जो जिन्दगीभर ज़ाहिदे-खुश्क रहे, कभी एक बूँद सुरा हलकके नीचे उतारनेका अवसर नही मिला, वे भी अपनेको मयख़ानेका इमाम घोषित करते है। जो सारी जिन्दगी नमाज-रोजेमे गँवाते रहे, हज-यात्राको सरके वल जाते रहे, वे शायर भी कावा-ओ-हश्रकी खिल्लियाँ उडाते रहे है।

इसका कारण यही है कि उर्दू-शायरीके महलका निर्माण इश्क और शरावके गारेसे हुआ है। गजलमे शरावो-इश्कके अतिरिक्त और कुछ है ही नही। अत हर व्यक्ति जो शायर वनना चाहता है, उसे शरावो-इश्कके गीत गाने ही पडते है। चाहे उसके जीवनमे इनसे दूरका भी लगाव न हो।

उर्दू-शायरोके जीवन-परिचयमे अक्सर यह पढनेमे आता है कि वे ९-१० वर्षकी आयुमे ही शेर कहने लगे थे। भला यह भी कोई उम्रमे उम्र है, जिसमे इश्क सम्वन्धी किसी भी वातका अनुभव हो सके। फिर भी शायरीकी परम्पराके अनुसार इन वाल-कवियोके कलाममे हुस्न, माशूक, रकीव, दरवान, हरजाई आदि सभी देखनेको मिलते है। माँ-

बापके अत्यन्त प्रयत्न करनेपर भी दूध पीनेके लिए भी जिनकी नीद उचाट नही हो पाती, वे भी अपने आईनए-कलाममे गमे-हिजरॉमे रात-रातभर रोते-बिसूरते नजर आते हैं।

तात्पर्य यह है कि वे अबोध किशोर जो प्रेम सम्बन्धी अनुभवोसे शून्य हैं, वे भी उर्दू-परम्पराका सहारा लेकर कल्पना क्षेत्रमे आशिक बने मजनूँ की तरह घूमते हैं। जो नही जानते कि माशूक है किस मर्जकी दवा, वे भी माशूकोके हाव-भाव, नखरे-गमजे आदिको इस ढगसे नज्म करते हैं कि मालूम होता है इश्ककी सभी मजिले तै कर ली हैं।

उर्दूमे ऐसे ही अनुभवहीन, शायरोका इश्किया कलाम पाया जाता है। 'हाली' जैसा शायर इसी दूषित प्रथाके कारण अपने आपको वर्षो धोखा देता रहा। इस धोखे-धडीके सम्बन्धमे हाली लिखते हैं—

"शायरीकी बदौलत चन्द रोज झूठा आशिक बनना पडा। एक खयाली माशूककी चाहमे दश्तेजुनूँ (उन्माद-मार्ग)की वह खाक उडाई कि कैस-ओ-फरहादको गर्द कर दिया। कभी नालये-नीमशबी (रात्रिमे बिलखते हुए)से रब्बेमसकन (ईश्वरासन)को हिला डाला, कभी चश्मेदरियाबार (ऑसुओ)से तमाम आलमको डुबो दिया। आहो-फुगॉके जोरसे करोंबयॉके कान बहरे हो गये। शिकायतोकी बौछारसे जमाना चीख उठा। तानोकी भरमारसे आसमान चलनी हो गया। जब रश्कका तलातुम (ईर्ष्याका वेग) हुआ तो सारी खुदाईको रकीब (प्रतिद्वन्द्वी) समझा। यहॉतक कि आप अपनेसे बदगुमान हो गये। . बार-हा तेगेअब्रू (भवे-रूपी तलवार)से शहीद हुए और बार-हा एक ठोकरसे जी उठे। गोया जिन्दगी एक पैरहन (वस्त्र) था कि जब चाहा उतार दिया और जब चाहा पहन लिया। मैदानेकयामतमे अक्सर गुजर हुआ। बहिश्त-ओ-दोजखकी अक्सर सैर की। बादानोशी (शराब पीने) पर तो खुम-के-खुम लुढा दिये और फिर भी सैर (सन्तुष्ट) न हुए। . कुफ्रसे मानूस और ईमानसे बेजार रहे। . खुदासे शोखियाँ की।

..२० वर्षकी उम्रसे ४० वर्षतक तेलीके बैलकी तरह इसी एक चक्करमे फिरते रहे और अपने नज़दीक सारा जहान तय कर चुके। जब आँख खुली तो मालूम हुआ कि जहाँसे चले थे, अबतक वही है।"[१]

'हसरत'की सबसे बडी विशेषता यही है कि उन्होने अपनेको इस धोखे-जालमे नही फँसाया। स्वय भी सच बोले और दूसरोको भी सच बोलनेके लिए प्रोत्साहित किया। 'हसरत'का प्रेम मानवी-प्रेम है। उन्होने ईश्वरकी आडमे प्रेमका बखान करके न तो भक्त बननेकी कभी चेष्टा की और न कभी दार्शनिक और आध्यात्मिक बननेकी भूल की। उन्होने केवल इसी दुनियाके प्रेमका बखान किया है।

हसरत एक सफल प्रेमी थे। अत उनके कलाममे हिज्र, नाले, नाकामी, बेऐतनाई आदिकी कैफियतोका बयान बहुत कम मिलता है, और यत्र-तत्र जो थोडा-बहुत मिलता है, वह उर्दू-परम्पराके हौजमे जी बहलानेके लिए कूद पडनेके कारण मिलता है।

हसरतका जीवन इश्क, तसव्वुफ और राजनीतिका सगम रहा है। इश्ककी धारा उनके यहाँ अबाध गतिसे प्रवाहित रही है, और एकाकार हो गई है।

तसव्वुफकी झलक यत्र-तत्र इसलिए मिलती है कि हसरत' धार्मिक व्यक्ति थे। नमाज-रोजेके सख्त पाबन्द, अर्से दराजसे हजके यात्री और सूफियोके श्रद्धालु ऐसे भक्त कि फिरगी महलके एक सूफी बुजुर्गके हाथपर बैत कर चुके थे। प्रतिवर्ष अजमेर, प्रानकिलयर, बहराइच आदि सूफियाए-करामके उर्सोमे शरीक होते थे। यही नही, उन्होने अपनी जीवन-लीला भी फिरगी महलकी दरगाहमे समाप्त की। वही उनको समाधि मिली और प्रतिवर्ष उनकी समाधिपर भी उनकी अन्तिम अभिलाषाके अनुसार उर्स होते रहनेकी व्यवस्था हुई। इसी श्रद्धा-भक्तिके कारण उनके कलाममे

---

[१]शेरोशायरी पृ० २७५-७६।

यत्र-तत्र सूफियाना शेर नज़र आते है। लेकिन उनका यह रग फीका है। और फीका होना लाज़िमी भी था। गुरुजनोकी श्रद्धा-भक्तिमे आनन्द तो मिलता है, पर प्रेयसी-मिलनकी प्रतीक्षामे जो उत्कठा, तडप, बेचैनी, और गर्मि-ए-मुहब्बत होती है, वह श्रद्धा-भक्तिमे नही। कर्तव्य पूर्ण करने और हृदयकी उमगमे जो अन्तर है, या भाई और पतिके साथ नारीके स्नेह और चाहतमे जो अन्तर है, वही अन्तर 'हसरत'की आशिकाना और सूफियाना शायरीमे है।

'हसरत'की राजनैतिक शायरी तो और भी फीकी और बेजान है। जनाब खलीलुलरहमान आजमी लिखते है—

"हसरतने बार-हा जेलमे चक्की पीसी और पुलिसके कोडे खाये। लेकिन उनकी सियासी (राजनैतिक) शायरी रस्मी और फुसफुसी है। . क्या वजह है कि उनकी शायरीमे उनकी जिन्दगीका यह पहलू पूरे तौरपर अपना अक्स न दिखा सका ? यह सवाल दरअस्ल बडा अहम (आवश्यक) है और वाकई हैरत होती है कि वही 'हसरत' जिनकी ज़िन्दगीमे हिन्दोस्तानने कितनी करवटे ली, काग्रेसकी इब्तदाई तहरीके (प्रारम्भिक आन्दोलन) आजादीसे लेकर जगेअजीम, कहते-बगाल, तकसीमेहिन्द, फिसादात और न ज़ाने कितने वाकयात जिन्हे हिन्दोस्तानके बिगाडने और बनानेमे बडा दखल है, 'हसरत' ही के ज़मानेमे पेश आये और खुद 'हसरत' उसमे ज़ाती तौरपर शरीक रहे, लेकिन 'हसरत'की शायरीमे इन वाकयातकी गरमी, खून और धमक कही महसूस नही होती। उन्होने तिलक, डा० अन्सारी या बाज सियासी रहनुमाओ (राजनैतिक नेताओ)के बारेमे जो नज़्मे लिखी है, वोह बहुत रस्मी अन्दाज़-मे लिखी गई है, जैसे किसीका सेहरा लिख दिया जाये। वोह नक्काद (आलोचक) जो किसी शायरपर लिखते वक्त महज़ उसके जमानेके हालात और समाजी पसेमज़र (सामाजिक स्थिति)पर ही निगाह रखते है, यहाँ बडी दुश्वारीमे मुब्तिला हो जायेगे। आखिर 'हसरत'के बारेमे

क्या फतवा सादिर किया जाये ? क्या वे रजअत पसन्द (दकियानूसी, पुराने खयालके) शाइर थे, कि जमानेकी तरफसे आँख वन्द करके अपनी महबूबा (प्रेयसी)की यादमे मुब्तिला रहे ? क्या वे कौमी तरक्की और आजादीकी तहरीकमे दिलसे हिस्सा नही ले रहे थे ? मेरा ख़याल है 'हसरत'का बडे-से-बडा मुखालिफ भी इस बातकी जुरअत नही कर सकता कि उनके खुलूस (नीयत)पर शुबहा करे। उन्होने हिन्दुस्तानकी जगे-आजादीमे जो कुर्बानियाँ दी है, उनका ऐतराफ न करना बडी बेईमानी होगी। लेकिन उनकी शायरीको पढते और उसपर राय देते वक्त जरा सब्रसे काम लेना पडेगा। 'हसरत' मुख़लिस (साफ, निर्मल) थे, सच्चे थे। रजअत पसन्द नही, वल्कि बडे तरक्की पसन्द और इन्सानियतके लिए वडे मुफीद थे। लेकिन शायरीपर इन्सानके उस शऊरका असर पडता है, जो उसके मिजाज और उसकी शख्सियत (व्यक्तित्व)का परवरदा (पाला हुआ, पोसा हुआ) होता है। अगर कोई नक्काद (आलोचक) शायरके मिजाजको समझ ले और उसके शऊरका तजजया (परख) कर ले तो उसकी शायरीके महरकात (उभारो) और उसके मौजूआत (कविता-विषय)की नौइयतको वहुत आसानीसे समझ सकता हूँ। दर-अस्ल खारजी दुनियामे जो कुछ हो रहा है, उससे तो इन्कार मुमकिन ही नही, लेकिन खारजी दुनियाका अक्स हर शायरपर उसके शऊरके ऐतवार ही से पडता है। एक आदमी इनकलावकी जगमे एक मुखलिस (सच्चे) सिपाहीकी हैसियतमे काम करनेके वावजूद आजादी और इनकलावके इदराक (सूझ-बूझ)से महरूम होता है, और उसके शऊरमे उसे नज्व करने और उसकी तहोतक पहुँचनेकी सलाहियत (क्षमता) नही होती। वह अपने जिस्मो-जानको उस राहमे कुर्वान करना तो जरूरी समझता है, लेकिन उसे यह पता नही होता कि यह राह किस तरह मुतय्यन (निश्चित) की जाये। इसमे कौन-कौनसे मोहरे और चाले हैं। किन हथियारोंसे काम लिया जाये कि दुश्मनपर फतह हासिल हो। कव कदम फूंककर

रखना है और कब तेजगामीकी जरूरत है। उसे तो सिर्फ आज़ादीसे मुहब्बत है, और उसका वोह एक जॉनिसार सिपाही है। इस सिपाहीके खलूसकी भी तारीफ की जायेगी, लेकिन उसके शऊर और इदराक (बुद्धि और समझ)पर भरोसा नही किया जा सकता। एक आदमी जो आजादी और इन्कलाबके लिए इतनी कुर्वानियाँ नही दे सकता, लेकिन वह उससे अलग रहते हुए भी उसे अपने शऊरमे जज्ब करनेकी सलाहियत (क्षमता) रखता है और साथ ही साथ उसके अन्दर खलूस है तो वह इस जज्बे (भाव)को शिद्दतसे महसूस कर सकता है, और उसके इदराक (सूझ-बूझ)पर हम ज्यादा भरोसा कर सकते है। 'हसरत' और 'इकबाल' दोनोकी शायरीको पढिये तो पता चलेगा कि सिर्फ शख्सियतोके फर्कने एक सियासी (राजनैतिक) आदमीको मुहब्बतका शाइर और गैर सियासी तथा गोशानशीन शख्सको कौमोमुल्क आजादी-ओ-सियासत और इन्सा-नियतका शायर बनाया। 'हसरत'की सच्चाईमे कोई शुबहा नही, लेकिन उनकी शख्सियतमे वोह अन्सर (तत्त्व) नही थे, जो एक शख्सको मदीए, सियासतदाँ, मुफक्कर, फलसफी और मसायलेहयात (जीवन-गुत्थियो)का इदराक रखनेवाला बना देते है। उनकी सियासी जिन्दगीसे जो लोग वाकिफ है, वे अच्छी तरह जानते है कि 'हसरत' एक सियासी कारकुन (कार्य-कर्त्ता) होनेके बावजूद सियासी सूझ-बूझ नही रखते थे। वोह पुरखुलूस (सच्चे) मगर जज्बाती (भावुक) आदमी थे। बहुत जल्द किसीके बारेमे कोई राय कायम कर लेते थे। यही वजह है कि सियासतमे वोह हमेशा नाकाम रहे। हरजमायतमे हिज्बे मुखालफत (विद्रोहीवर्ग)की सरदारी उन्होने की और हर तजवीजपर मुखालफतमे धुआँधार तकरीरे करनेके लिए वे मशहूर थे। किसी बातको ठण्डे दिलसे गौर करना, मसालह (अच्छे-बुरे पहलुओ) पर नजर रखना, जब्तो-इस्तकलाल (धैर्य और सजीदगी), हालात और वक्तकी रफ्तारको पहचानना और उसके तकाजोको समझना, मुनासिब मौकेपर कदम उठाना, यह

'हसरत'की सियासतमे शामिल न था। यही वजह है कि हम उन्हे एक सच्चा और वफादार सिपाही कह सकते है। लेकिन बा-शऊर सियासतदाँ नही। जाहिर है कि सिपाही लड तो सकता है, लेकिन जगपर बा-शऊर तरीकेसे नजर नही डाल सकता। बल्कि उसको तो अपनी कठिन मज़िलोमे अपने माजी (भूतकाल) की सुनहरी यादके सहारे ही दिल बहलाना होगा और मेरा ख्याल है कि हसरत जो बुढापेतक इश्किया शायरी करते रहे, उसकी सबसे बडी वजह यही है।"[१]

'हसरत'की शायरी उनकी आप बीती जीवनी है। यही उनकी शायरीकी सबसे बडी विशेषता है और यही उनकी शायरीका दोष भी। 'हसरत' एक अपने ही समाज और खान्दानकी युवतीसे प्रेम करते है। उसके लिए सामाजिक और खान्दानी रीतिरिवाजोसे सघर्ष करते है। इसी अवधिमे प्रेयसीसे छेड-छाड और ऑख-मिचौनी चलती रहती है, और अन्तमे 'हसरत' उसे अपनी जीवन सगिनी बना लेनेमे कामयाब हो जाते है।

प्रेयसीको पत्नी बना लेनेपर इश्क मर जाता है। जो प्रेयसी कभी ईश्वर समझी जाती थी, वह शादी हो जानेपर दासी हो जाती है। शादी होनेपर प्रेयसीका वह बुलन्द मर्तबा कायम नही रह सकता, जो पहले होता है। फूल केवल दूरसे निहारनेके लिए है, सूँघनेपर उसका गौरव नष्ट हो जाता है।

हसरतका इश्क शादी होनेके बाद कबतक स्थिर रहता ? अधिक-से-अधिक ८-१० वर्ष। यानी हसरतकी २५-३० वर्षकी उम्रतक। हसरतकी प्रेयसी जो शादीके बाद 'बेगम हसरत' कहलाने लगी, उसे 'हसरत'के इश्किया अशआर सुननेके बजाय चूल्हे-चक्कीसे अधिक सरोकार हो गया।

---

[१]निगार जनवरी १९५२ पृ० ९३।

'हसरत'से ज्यादा अब वह बाल-बच्चोको चाहने लगी। उनके भरण-पोषण, शिक्षा-दीक्षाकी चिन्तामे दिन-रात घुलने लगी।

यही कारण है कि 'हसरत'की इश्किया शायरीमे एकरूपता नजर आती हैं। यानी उन्हे जो अनुभव जवानीमें हुए, उन्हीकी बुढापेतक नज्म करते रहे। हसरतकी शायरी जवानीकी शायरी है। उनकी शायरीमे जवानीके उतारके साथ उतार आता गया है। होना तो यह चाहिए था कि उम्रके साथ-साथ नये-नये अनुभवोको अपनी शायरीके बढते हुए अभ्यासके साथ नित नये ढगसे सँजोते और तराशते जाते। लेकिन ऐसा नही हुआ, ओर इसका कारण केवल यही हो सकता है कि जवानीके बाद उनका इश्क भी बूढा हो गया। और उनका राजनैतिक जीवन इतना सघर्षमय हो गया कि फिर वे दिलकी शायरी न करके रस्मी तौरपर शायरी करते रहे। यही वजह है कि उनकी शायरी भी उम्रके साथ बूढी होती चली गई, और उनकी शायरीमें उत्तरोत्तर फीकापन आता चला गया।

वे ज़िन्दगीभर एक ही मौज़ूँसे लिपटे रहे। जवानीके उफानमे जो बोल, बोल गये—

याद कर वह दिन कि तेरा कोई सौदाई न था।
बा-वजूदे-हुस्न तू आगाहे-रअनाई न था॥

वही बुढापे (१९४१ ई०)मे भी बोलते रहे—

जब सिवा मेरे न था कोई निशाना तेरा।
याद है मुझको अभीतक वोह जमाना तेरा॥

आज़मी साहब फर्माते है—

"हसरतके पहले दीवानसे उनके कलामका मुतालआ शुरू कीजिये तो तीसरे-चौथे दीवानतक पहुँचते-पहुँचते हसरत कुछ मद्धम होना शुरू होते है, और ग्यारहवे-बारहवे तक पहुँचते-पहुँचते तो वे बिल्कुल बुझ जाते है। इधर दस-बारह सालसे अपनी जिन्दगी ही मे ब-हैसियत शायरके

उनका रोल तकरीबन खत्म हो गया था। कभी-कभार जो गजले कहते थे, वह रस्मी और बेजान होती थी। जिन्हे लोग तवरुक्कन पढते थे।"[१]

हसरतका शायरीमे मर्तबा—

'हसरत' मौजूदा गजलगोईके बानी-मुबानी समझे जाते है। आपने उर्दू-गजलमे उस समय जीवन-सचार किया, जब कि वह मृत्युशैयापर पडी छटपटा रही थी। न उसमे युगके साथ चलनेकी शक्ति रही थी, न अपनी ओर आकर्षित करनेकी क्षमता। वह बिस्तरे-मर्गपर पडी हुई कराह रही थी, और सन्निपात ज्वरमे इस तरह बड-बडा रही थी—

गिरे होते उलझकर आस्तॉसे।
चले आते हो घबराये कहॉसे ?

हमी झूठे है, दगाबाज हमी है, साहब।
हम सितम करते है और आप करम करते है ॥

बागबॉ कलियॉ हो, हलके रगकी।
भेजना है एक कमसिनके लिए ॥

छुपा-छुपाके नजर-बाजियॉ हो गैरोसे।
हमीसे ऑख चुराना! जरा इधर देखो!!

'अमीर' इतना न छेडो उसको सरेशाम।
कि शब भर प्यार करनेको पडी है ॥

वोह फूलवालोका मेला वोह सैर याद है 'दाग'।
वोह रोज झरनेपै जमघट, परी जमालोका ॥

---

[१]निगार जनवरी १९५२ पृ० ११०।

गुद-गुदाया जो उन्हे नाम किसीका लेकर ।
मुसकराने लगे वोह मुँहपै दुपट्टा लेकर ॥

ईदका दिन है परीज़ाद हैं सारे घरमें ।
राजा इन्दरका अखाडा है हमारे घरमें ॥

परदा उठाके मुझसे मुलाकात भी न की ।
रुख़सतके पान भेज दिये बात भी न की ॥

सुबहको आये हो भूले शामके ।
जाओ भी अब तुम रहे किस कामके ॥
हाथापाईसे यही मतलब भी था ।
कोई मुँह चूमे कलाई थामके ॥

वस्लकी रात चली एक न शोख़ी उनकी ।
कुछ न बन आई तो चुपकेसे कहा मान गये ॥

पान बन-ठनके मेरी जान कहाँ जाते हैं ?
यह मेरे कत्लके सामान कहाँ जाते हैं ॥

क्यो मुझसे है यह मुफ़्तकी तकरार, क्या हुआ ?
अच्छा जो मैंने कर ही लिया प्यार, क्या हुआ ?

जब वोह बाहे गलेका हार नही ।
दूरका प्यार कोई प्यार नही ॥

वोह एक हम कि जो चाहा किया विसालकी रात ।
वोह एक तुम कि तुम्हारी हयासे कुछ न हुआ ॥

तुमने एक बोसेपै 'मुजतर' दिले-मुजतर बेचा ।
यार ईमानकी ये है कि बडे दाम लिये ॥

कहते हैं "वस्लमें तुम छेड़े ही जाते हो मुझे।
गालियाँ कुछ अभी पड़ जायें तो क्या बात रहे" ॥

किसीसे वस्लमें सुनते ही जबान सूख गई।
"चलो हटो भी, हमारी जबान सूख गई॥"

आँखें दिखलाते हो जोबन तो दिखाओ साहब।
वोह अलग बाँधके रक्खा है जो माल अच्छा है॥

जले हैं गैर क्या-क्या, वोह जो खिलवतसे मेरे निकले।
परेशाँ, बाँधकर जूडा, दुपट्टा ओढकर उलटा॥

छेड़ देना था कि भरमार थी दुश्नामोकी।
एक सीगा था कि फ़र-फर उसे गरदान गये॥

इस तरहकी अश्लील बकवास जब कोई रोगी प्रारम्भ कर दे, तो घरवालोके अतिरिक्त भला किसमे साहस है, जो उसकी परिचर्या या मिजाजपुरसीके लिए नज़दीक आ सके। मृत्युके समीप जाती हुई गज़लको सबसे घातक चरका 'हाली'के नज्म आन्दोलनसे लगा। जब घरका भेदी प्राण लेनेपर उतारू हो जाय, तब उसके बचनेकी आशा भी क्या की जा सकती है?

'हसरत'ने ठीक ऐसे सकटकालमे गजलको सहारा दिया। 'दाग' और 'अमीर' मीनाईकी चिकित्सासे जो बड-बडाहट प्रारम्भ हो गई थी, उसे 'हसरत'ने प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा समाप्त ही नही किया, अपितु ऐसा कायाकल्प किया कि उसे अमरत्व प्राप्त हो गया। इस कायाकल्पका श्रेय केवल 'हसरत'को है, यह कहना न्यायसगत नही होगा। 'हसरत' की शायरीका जब युग प्रारम्भ हुआ, तब 'शाद' अजीमाबादी, 'यास' अज़ीमाबादी (अब नाम यगाना चगेजी) और लखनवी शायर सफी, अज़ीज़, आरज़ू, जलील, असर, साकिब, महशर, तथा असगर गोण्डवी, फानी

बदायूनी आदि बडी तनदिहीसे गजलकी सार-सँभाल कर रहे थे, और उस पतनोन्मुखी वातावरणमे भी उनके मुँहसे सुरुचिपूर्ण शेर निकल रहे थे।

'हसरत' और उनके समकालीन उक्त शायरोने सचमुच गजलको जीवनदान दिया। उसे भद्रसमाजके उपयुक्त बनाया और युगके साथ चलते रहनेकी शक्ति प्रदान की।

'हसरत'ने उर्दू गजलकी पुरानी रवायतोको नये साँचेमे ढाला। नई तराश-खराश की। उसे आकर्षक रूप-रग दिया। उनके कलाममे 'मुसहफी' जैसे कोमल और मधुर भाव और 'मोमिन' जैसी फारसी तरकीबोका समिश्रण एक अजीव लुत्फ पैदा कर देता है। लेकिन उनके यहाँ 'मीर' जैसा सोजो गुदाज नही है। स्वय भी फर्माया है—

'मीर'का शेवये-गुफ़्तार कहाँसे लाऊँ ?

और 'मीर'का शेवये-गुफ्तार बाज़ारमे बिकनेवाली चीज़ होता तो 'हसरत' भी खरीद लाते। मगर जो शेवये-गुफ्तार दिलमे चरका लगनेपर और जीवनभर खून रोनेसे आता है, उसे 'हसरत' क्योकर प्राप्त कर सकते थे? वे कामयाब आशिक थे। वे क्या जाने असफलता और निराशाके आनन्दको। उन्हे प्रेयसीकी यादमे सर फोडने और बिलख-बिलखकर रोनेकी लज्ज़त कभी नसीब नही हुई।

'हसरत' 'तसलीम'[1] लखनवीके शिष्य थे। और 'मोमिन' स्कूलके तनहा यादगार। सो वह भी चल बसे। बकौल 'आसी' गाजीपुरी—

सुबह तक वोह भी न छोडी तूने ऐ बादेसबा !
यादगारे-रौनके-महफिल थी परवानेकी खाक ॥

---

[1]'तसलीम' 'तसनीम'के शागिर्द थे और 'तसनीम' 'मोमिन'के शिष्य थे। 'मोमिन' 'तसनीम' और 'तसलीम'का परिचय-कलाम 'शेरोसुख़न' प्रथम भागमे दिया जा चुका है।

'हसरत' अवध प्रान्तीय और 'तसलीम' लखनवीके शिष्य होते हुए भी देहलवी रगके शायर थे। ख़ुद भी फर्माया है—

'हसरत' मुझे पसन्द नही तर्ज़े-लखनऊ।
पैरो हूँ शायरीमे जनाबे 'नसीम'का॥

'हसरत'ने जिन 'नसीम' साहबका पैरो (अनुयायी) होनेका उल्लेख किया है, वह 'नसीम' देहलवीसे मुराद है। जो 'मोमिन'के शिष्य और 'हसरत'के उस्तादके उस्ताद थे। हसरतके उस्ताद 'तसलीम' लखनवी होते हुए भी सदैव देहलवी स्कूलके अनुयायी रहे।

'हसरत'के चन्द अशआ़रकी झाँकी—

मूसाने ख़ुदाका जलवा तो देखना चाहा, लेकिन अपनेमे इतनी शक्ति और सामर्थ्य न जुटा सके, जो ख़ुदाके जलवेको सह सके। ख़ुदा तो फिर भी ख़ुदा है, लेकिन 'हसरत'की प्रेयसी भी इतनी महान है कि उसकी ओर देखनेका भी साहस नही होता—

मेरी निगाहे-शौकका शिकवा नही जाता।
सोतेमें भी पाससे देखा नही जाता॥

'हसरत'का इश्क कितना बुलन्द और पवित्र है कि वे उसके आगे फिरदौसको भी हेच समझते है—

वल्लाह तुझे छोडके ऐ कूचये-जानाँ!
'हसरत'से तो फ़िरदौसमें जाया नहीं जाता॥

हमारा प्राणप्यारा जीवन सर्वस्व हमे विसार बैठा है, इसका कारण शायद यही है कि हमसे कोई अक्षम्य भूल हुई हे। अन्यथा उसकी यह उपेक्षा हमपर कदापि न होती—

फिर और तगाफुलका सबब क्या है खुदाया !
मैं याद न आऊँ उन्हे, ऐसा नहीं मुमकिन ।।

बच्चेकी तोतली और रसभरी वाणी सुनते-सुनते मन तृप्त नही होता। जी यही चाहता है कि बच्चा अपनी बाते बार-बार दुहराये जाय। इसीलिए ऐसा भाव धारण कर लिया जाता है कि हम उसकी बाते सुनना नही चाह रहे हैं। फलस्वरूप वह नई-नई अठखेलियो-द्वारा अपनी बातको बार-बार दुहराता है, और माँ-बाप आदि उसकी इस सरलताका आनन्द लूटते हैं। 'हसरत'की प्रेयसीकी भी यही आन्तरिक अभिलाषा हैं कि वह अपने प्यारेके प्यार भरे बोल बराबर सुनती रहे—

खुद उसको मेरी अर्जे-तमन्नाका शौक़ है ।
क्यों वरना यूँ सुने है कि गोया सुना नही ।।

भारतीय नारी पतिको ही परमेश्वर समझकर चारो ओरसे ध्यान समेटकर उसीकी हो रहती हैं। लेकिन पुरुषकी ओरसे उसे वह प्यार और सम्मान नही मिलता, जिसकी वह अधिकारिणी है। जो नारी जननी है, अम्बा है, सृष्टिकर्त्ता है, वह नारी भी ईश्वरका ही रूप है। पुरुष यदि कामुकताकी आँखे बन्द करके नारीके इस रूपका दर्शन करे तो फिर स्वर्ग और बैकुण्ठमे जानेकी ज़हमत गवारा क्यो की जाय ? इसी पृथ्वीपर जन्म लेनेको विष्णु, ब्रह्मा, तरस उठे 'हसरत' इसी पवित्र भावना-को यूँ व्यक्त करते हैं—

हम क्या करें अगर न तेरी आरज़ू करें ।
दुनियामें और भी कोई तेरे सिवा है क्या ?

अपने प्यारेकी यादमे दिन-रात लीन रहनेके अतिरिक्त और कुछ भी सुखकर नही है—

शब वही शब है, दिन वही दिन हैं ।
जो तेरी यादमें गुज़र जायें ।।

प्राचीन शायरोने प्रेमको असाध्य रोग बताया और उससे बचते रहनेकी कडी-से-कडी चेतावनियाँ दी। वर्त्तमान युगीन शायर 'शाद' और 'जोश'ने कहा कि इश्क मनुष्यके लिए आवश्यक है। बिना इसके आदमीमे आदमीयत नही आती। लेकिन 'हसरत' एक कदम आगे बढते हुए फर्माते है कि इश्क इस आदमियतको अमरत्व प्रदान करता है—

तुमपर मिटे तो जिन्दये-जावेद[1] हो गये।
हमको बका[2] नसीब हुई है, फनाके[3] बाद॥

और सचमुच—"जिसे मरना नही आया, उसे जीना नही आया।"

माँगनेसे भी कभी राजनैतिक अधिकार मिले है? अधिकार माँगे नही जाते, छीने जाते है। इसी आशयको 'हसरत' गजलके अन्दाजमे यूँ व्यक्त करते है—

वस्लकी बनती है इन बातोसे तद्‌बीरे कहीं?
आरज़ूओसे फिरा करती है, तकदीरें कही?

इश्क किया नही जाता, हो जाता है। अनजानेमे ही दिलपर ऐसी चोट लग जाती है कि उस चोटका घाव जीवनभर नही भरता, और यह अनजानेमे, बेसमझीमे जो हो जाता है, उसकी याद भी कभी विस्मरण नही होती। वह एक अव्यक्त आनन्दका अनुभव कराती रहती है—

हुस्नसे अपने वोह गाफिल था, मैं अपने इश्क़से।
अब कहाँसे लाऊँ वोह नावाकफीयतके मजे॥

'हसरत'की प्रेयसी लज्जाशील नारी है—

आईनेमें वोह देख रहे थे बहारे-हुस्न।
आया मेरा ख़याल तो शरमाके रह गये॥

---

[1]अमर; [2]जिन्दगी, [3]मृत्युके।

मिर्जा गालिबका अनुभव[1] है कि मृत्युसे पूर्व दु.खोसे छुटकारा नही मिल सकता। लेकिन 'हसरत' और ही कुछ कहते है—

क्यो कहे हम कि गमेदर्दसे[2] मुश्किल है फराग[3]।
जब तेरी यादमें हर फिक्रसे हासिल है फराग ॥

जब इश्कमे पुख्तगी आ जाती है, तब विरह और मिलनमे कोई अन्तर नही रहता—

अब सदमये-हिजराँसे भी डरता नहीं कोई।
ले पहुँची है याद उनकी बहुत दूर किसीको ॥

अपने प्यारेकी यादके अतिरिक्त ससारके समस्त कार्य व्यर्थ है। यहाँतक कि पूजा-पाठसे भी आत्म-विज्ञापन और अभिमानकी गन्ध आती है—

कुछ भी हासिल न हुआ, जोहदसे[4] नखवतके[5] सिवा।
शग्ल बेकार है सब उसकी मुहब्बतके सिवा ॥

---

[1]वह अनुभव यह है—

कैदे-हयात-ओ-बन्देगम अस्लमें दोनों एक है।
मौतसे पहले आदमी गमसे निजात पाये क्यो ?

[यह जीवन शरीररूपी पिजरेमे कैद है, जबतक इस शरीरमे रहेगा कष्ट उठाता रहेगा। जिन्दगी और कष्टोका बन्धन (कैदेहयात-ओ-बन्दे-गम) परस्पर भिन्न नही, अपितु एक ही अवस्थाके दो नाम हैं। दुखोके पुंजको ही जिन्दगी कहते है। इसलिए मुक्तिसे पूर्व गमोसे छुटकारेकी आशा व्यर्थ हैं] [2]दर्दके रजसे, पीडासे; [3]छुटकारा; [4]दिखावटी उपासनासे, [5]अभिमानके।

इसी रंगके दो शेर और—

सबसे मुँह मोड़के राज़ी है तेरी यादसे हम।
इसमें इक शाने-फ़रागत[1] भी है राहतके[2] सिवा॥

शाम हो या कि सहर याद उन्हीकी रखनी।
दिन हो या रात हमें ज़िक्र उन्हीका करना॥

हसरतके यहाँ भी उर्दू गजलकी परम्पराके अनुसार रकीबका जिक्र आता है। मगर किस खूबीके साथ? वे रकीबकी महफिलमे अपने हबीबकी बेजा हरकतोको देखने या उसकी चौकसी करने नही जाते। वे तो केवल अपनी प्रेयसीके हमराह रहते है—

बज़्मे-दुश्मनमें भी दिल थामे हुए बैठा रहा।
ग़ैर मुमकिन है जहाँ ऐ शोख़! तू हो, मैं न हूँ॥

अक्सर लोगोने हसीन, मगर बेशऊर, युवतियोको रेलवे प्लेटफार्म या किसी दरियापर स्नान करते और कपडे बदलते देखा होगा। उनके फूहडपन और बेशऊरपनसे वहाँ खडे हुए शोहदे लुत्फ उठानेसे बाज़ नही आते--

तमन्नाने की ख़ूब नज़्ज़ारा-बाज़ी।
मज़ा दे गई हुस्नकी बेशऊरी॥

हसरतके दीवानमे इस तरहके गिरे हुए शेर स्थान न पाते तो उत्तम होता—

तुझमें कुछ बात है ऐसी, जो किसीमें भी नही।
यूँ तो औरोसे भी दिल हमने लगा रक्खा है॥

---

[1]और न कुछ करनेकी शान; [2]चैनके।

वात तो 'हसरत' अपनी प्रेयसीसे यही कहना चाहते थे कि तू विश्वकी सुन्दरियोमे यकता है, तेरा कोई जवाब नही। मगर—"औरोसे भी दिल हमने लगा रक्खा है" कहकर अपनेको भौरा सावित कर दिया और प्रेयसीको व्यर्थमे आशकित और वरहम कर दिया। इसी वातको 'मीर'ने इस खूबीसे व्यक्त किया है कि उनकी प्रेयसीके अनुपम सुन्दरी होनेके साथ ही 'मीर'के पारखी हृदय और सच्चे इश्कका परिचय मिलता है—

फूल, गुल, शम्सोकमर[1] सारे ही थे।
पर हमें उनमें तुम्ही भाये बहुत॥

अब हम 'कुलियाते' हसरतसे चुनकर सभी रगके कुछ शेर सनवार दे रहे हैं। ताकि पाठक हसरतकी शायरीके उतार-चढावका अनुमान लगा सके।

१८९३–१९०३ ई०

जो आना हो तो आओ बेतकल्लुफ।
यह अर्जे-जलवये-हैरत-फिजा[2] क्या ?

करते थे कभी हौसलये-तर्के-मुहब्बत।
अब सदमये-दूरी भी उठाया नहीं जाता॥
उम्मीद नही उनसे मुलाकातकी हरचन्द।
आँखोसे मगर शौके-तमाशा नही जाता॥

अल्लाहरी महरूमी, अल्लाहरी नाकामी।
जो शौक किया हमने सो खाम नजर आया॥
इस शग्लसे आँखोको दमभर जो नही फुरसत।
रोनेमें वह क्या ऐसा आराम नजर आया ?

---

[1]चाँद-सूर्य, [2]जलवा देखनेके लिए प्रार्थना कबतक की जाय ?

कफ़समे सैयाद बन्द करदे, नही तो, बेरहम छोड़ ही दे।
यहाँ उम्मीदोबीममे[1] आख़िर रहेंगे हम जेरेदाम[2] कबतक ॥

सताइये न मुझे यूँ ही दिलफिगार[3] हूँ मैं।
रुलाइये न मुझे ख़ुद ही बेकरार हूँ मैं॥
तेरा यह रंग कि है बेसबब खफा मुझसे।
मेरा यह हाल कि बेवजह बेकरार हूँ मैं॥

हज़ारों बार छेड़ा, जोशिशेगम-हाय-फ़ुरकतने[4]।
हज़ारों बार आँसू आपके सरकी कसम निकले॥

वोह जो बेचैन हुए देखके हालत मेरी।
हो गई और परेशान तबीयत मेरी॥

छेडा है दस्तेशौक़ने[5], मुझसे खफा है वोह।
गोया कि अपने दिलपै मुझे अख्तियार है!

१९०३-१९१२ ई०

हम रहे याँ तक तेरी खिदमतमें सरगर्मे-नियाज़[6]।
तुझको आख़िर आश्नाये-नाजे-बेजा[7] कर दिया॥

मालूस[8] हो चला था तसल्लीसे हाले-दिल।
फिर तूने याद आके बदस्तूर कर दिया॥

किसे फ़ुरसत? तुम्हारी जुस्तजूके शौके-बेहद्दसे।
अभी हमने कहाँ ढूंढा, अभी हमने कहाँ पाया?

---

[1], [2]आशा और डरके जालमे कबतक फँसे रहेंगे? [3]भग्नहृदय; [4]विरह, कष्टोंके जोशने; [5]अभिलाषी हाथोने; [6]नम्रप्रार्थी; [7]आवश्यकतासे अधिक सौन्दर्याभिमानी! [8]अभ्यस्त।

दयारेशौकमें मातम बपा है मर्गे-'हसरत'का।
वोह वज़ए-पारसा उसकी, वोह इश्के-पाकबाज़ उसका॥

चल भी दिये वोह छीनके सब्रोकरारे-दिल।
हम सोचते ही रह गये यह माजरा है क्या?

देखो जिसे, है राहे-फनाकी तरफ रवाँ।
तेरी महल-सराका यही रास्ता है क्या?

इरादे थे कि उनसे हाले-दिल सब मिलके कहदेंगे।
मगर मिलनेपै हमसे आज होता है न कल कहना॥

खुले न हमसे खमोशाने-आरज़ूकी ज़बाँ।
जो इत्तफाक भी हो, उनसे हमकलामीका॥

अब तो उठ सकता नही आँखोसे बारे-इन्तज़ार[1]।
किस तरह काटे कोई लैलो-निहारे-इन्तज़ार[2]॥
उनकी उलफतका यकी हो उनके आनेकी उम्मीद।
हो यह दोनो सूरतें, तब है बहारे-इन्तज़ार॥
उनके खतकी आरज़ू है, उनकी आमदका खयाल।
किस कदर फैला हुआ है, कारोबारे-इन्तज़ार॥

कमाले-खाकसारीपर यह बेपरवाइयाँ 'हसरत'।
मैं अपनी दाद खुद दे लूँ, कि मैं भी क्या कयामत हूँ॥

हमपर भी मिस्ले ग़ैर है, क्यो महरबानियाँ?
ऐ बदगुमाँ! यह खूब नहीं, बदगुमानियाँ॥

---

[1]प्रतीक्षाका बोझ, [2]प्रतीक्षाके रात-दिन।

भुलाता लाख हूँ लेकिन बराबर याद आते हैं।
इलाही तर्के-उलफतपर वोह क्योंकर याद आते हैं ॥
हकीकत खुल गई 'हसरत' तेरे तर्के-मुहब्बतकी।
तुझे तो अब वह पहलेसे भी बढकर याद आते हैं ॥

निगाहे-यार जिसे आश्नाये-राज[1] करे।
वोह अपनी खूबिये-किस्मतपै क्यों न नाज़ करे ॥

और तो पास मेरे हिज्रमें क्या रक्खा है।
इक तेरे दर्दको पहलूमें छुपा रक्खा है ॥
आह वह याद कि उस यादको होकर मजबूर।
दिले-मायूसने मुद्दतसे भुला रक्खा है ॥

न देखे और दिले-उश्शाकपर[2] फिर भी नज़र रक्खे।
कयामत है निगाहेयारका हुस्ने-खबरदारी[3] ॥
यही आलम रहा गर उसके हुस्ने-सहर परवरका[4]।
तो बाकी रह चुकी दुनियामें राहो-रस्मे-हुश्यारी ॥

मेरे उज्ने जुर्मपर मुतलक न कीजे इल्तफात[5]।
बल्कि पहलेसे भी बढ़कर कजअदा[6] हो जाइए ॥
मेरी तहरीरे-नदामतका[7] न दीजे कुछ जवाब।
देख लीजे और तगाफुल-आश्ना[8] हो जाइये ॥
हाय री बेअख्तियारी यह तो सब कुछ है मगर।
उस सरापा नाजसे क्योंकर खफा हो जाइये ॥

---

[1]भेद जाननेवाला, अन्तरग साथी, [2]आशिकोंके दिलपर; [3]सौन्दर्यताकी सावधानी, [4]रूपके जादूका, [5]कृपा, [6]निर्छे, ख़फा; [7]क्षमा-याचनाके, पत्रका, [8]उपेक्षापूर्ण।

मुझे शिकवये-जफाकी नही आने पाई नौबत ।
वोह सितम भी गर करे है,तो ब-लुत्फे होशमन्दी ।।

देख ऐ सितमेजानाँ ! यह नक्शे-मुहब्बत है ।
बनते हैं ब-दुश्वारी, मिटते हैं ब-आसानी ।।
थी राहते-हैरतकी किस दर्जा फरावानी ?
मैंने गमेहस्तीकी सूरत भी न पहचानी ।।

मैं उस बूते बदखूकी[1] इस आनपै मरता हूँ ।
खीचा न कभी उसने अन्दोहे-पशेमानी[2] ।।

अर्जेकरमपै[3] तर्के-जफा भी न कीजिये ।
ऐसा न हो कि आप मिला भी न कीजिये ।।

अब रोनेसे क्या होगा, परवाना है बेपरवा ।
बरबाद है सब महनत, ऐ शमअ् ! लगन तेरी ।।

जाहिर मलाले-रश्को-रकाबत[4] न कीजिये ।
बेहतर यही है उनसे शिकायत न कीजिये ।।

उज्रे-सितम जरूर न था आपके लिए ।
'हसरत'को शर्मसारे-नदामत न कीजिये ।।

सितम हो जाये तमहीदे-करम[5] ऐसा भी होता है ।
मुहब्बतमें बता ऐ जब्तेगम ! ऐसा भी होता है ।।

न मुझको इसकी खबर है, न खुद उन्हे है ख्याल ।
कुछ इस तरहसे मुहब्बत बढाई जाती है ।।

---

[1]बदआदत, [2]अपने जुर्मपर शर्मिन्दा होनेकी परेशानी न उठाई ।
[3]कृपाकी याचनापर, [4]ईर्ष्या, शत्रुताके भावको, [5]कृपाकी भूमिका ।

यह भी आदाबे-मुहब्बतने गवारा न किया।
उनकी तसवीर भी आँखोंसे निकाली न गई॥
दिलको था हौसलये-अर्ज़े-तमन्ना[1] सो उन्हे।
सर गुज़िश्ते-शबे-हिजराँ[2] भी सुनाई न गई॥

१९१२-१६ ई०

शरफ़[3] हासिल हो उस जानेजहाँसे[4] मुझको निसबतका[5]।
ग़ुलामीका सही, गर हो न सकता हो मुहब्बतका॥

आपको अब हुई है क़द्रेवफ़ा।
जब कि मै लायक़े-जफ़ा न रहा॥

तुझको पासे-वफ़ा ज़रा न हुआ।
हमसे फिर भी तेरा गिला न हुआ॥
कट गई अहतियाते-इश्क़में उम्र।
हमसे इज़हारे-मुद्दआ न हुआ॥

कौन लाता तेरे अ़ताबकी[6] ताब।
ख़ैर गुज़री कि सामना न हुआ॥
छिड़ गई जब जमाले-यारकी बात।
ख़त्म ता-देर सिलसिला न हुआ॥
मैं गिरफ़्तारे-उलफ़ते-सैयाद।
दामसे छुटके भी रिहा न हुआ॥

हर घड़ी शेख़को है फ़िक्रे-सवाब[7]।
यह भी इक तरहका अज़ाब[8] हुआ॥

---

[1]अभिलाषा प्रकट करनेका साहस; [2]विरह-रात्रिकी बीती घटना; [3]इज़्ज़त, [4]विश्वसुन्दरीसे, [5]सम्बन्धित होनेका; [6]क्रोधकी; [7]पुण्यकी चिन्ता; [8]रोग।

अब यह क्यों आप मनके फिर बिगड़े।
अब यह किस बातपर अ़ताब हुआ ॥
आपके हाथसे करम[1] कि सितम।
जो हुआ मुझपै बेहिसाब हुआ ॥

रहने लगी उनकी याद हरदम।
अब और हमे रहेगा क्या याद ?

वोह तो करदें मेरा कुसूर मुआफ।
मैं ही कहता नहीं, 'हुजूर मुआफ' ॥

सब आये, पर इक तू न आया, न आया।
तेरा देर देखा किये रास्ता हम ॥*
यह क्या मुंसिफी[2] है, कि महफिलमें तेरी।
किसीका भी हो जुर्म पायें सज़ा हम ॥
तेरी खूए-बरहमसे[3] वाकिफ थे फिर भी।
हुए मुफ्त शर्मिन्दये-इल्तजा[4] हम ॥

तमहीदे-सुलहे-शौकके[5] सामान हो गये।
जितने थे उनके जौर[6] सब अहसान हो गये ॥

---

[1]कृपा,

*साकी-ओ-मुतरिब आये, जाम आये, सुबू आये।
आना था जिनको वो ही न आये तमाम रात ॥
—शमीम जयपुरी

[2]न्यायपरायणता, [3]क्रोधीस्वभावसे, [4]प्रार्थना करके शर्मिन्दा [5]सुलह करनेके, [6]अत्याचार।

ख़न्दये-अहलेजहाँकी[1] मुझे परवा क्या थी।
तुम भी हँसते हो मेरे हालपै रोना है यही॥

अगर हुआ भी तो उल्टा असर दुआमें हुआ।
सकूनेयास[2] मिला, इज़्तराबके[3] बदले॥

जमालेयारकी[4] रंगीनियाँ अदा न हुईं।
हज़ार काम लिया हमने ख़ुश बयानीसे॥

बहुत खिजल[5] है तेरे दर्दसे दुआ मेरी।
यह ख़ौफ है कि न सुन ले कहीं ख़ुदा मेरी॥
छुपे वोह मुझसे तो क्या यह भी इक अदा न हुई।
वोह चाहते थे न देखे कोई अदा मेरी॥*
कही वोह आके मिटा दें न इन्तज़ारका लुत्फ।
कही क़ुबूल न हो जाये इल्तिजा मेरी॥†

मुझसे बरगश्ता न होते तो तअज्जुब होता।
आपको उज्रे-तग़ाफ़ुलकी ज़रूरत क्या है॥

खीच लेना वोह मेरा परदेका कोना दफ़अतन।
और दुपट्टेसे तेरा वोह मुँह छुपाना याद है॥

---

[1]ससारके हँसनेकी, [2]निराशाका चैन, [3]तड़पके, [4]प्रेयसीके रूपकी, [5]शर्मिन्दा।

*अन्दाज़ अपना देखते हैं आईनेमें वोह।
और यह भी देखते हैं, कोई देखता न हो॥
—निज़ाम रामपुरी

†हम आँख वन्द किये तसव्वुरमें पड़े हैं।
ऐसेमें कहीं छमसे वोह आजायें तो क्या हो॥
—रियाज़ ख़ैराबादी

गैरकी नजरोंसे बचकर सबकी मर्जीके खिलाफ।
वोह् तेरा चोरी छुपे रातोंको आना याद है॥

परदेसे इक झलक जो वोह् दिखलाके रह गये।
मुश्ताकेदीद[1] और भी ललचाके रह गये॥
टोका जो बज्मेगैरसे आते हुए उन्हे।
कहते बना न कुछ वोह् कसम खाके रह गये॥

१९१६-१९१७ ई०

सुनके जिक्रेइश्क रह जाते हैं अक्सर हम खमोश।
अब तलक इतना असर बाकी है उनकी यादका॥

क्या हुआ 'हसरत' वोह् तेरा इद्दआए-जब्तेग़म[2]।
दो ही दिनमें रंजे-फुरकतका गिला होने लगा॥

की मैंने लुत्फेयारकी पहले न कुछ भी कद्र।
होती है किससे जिन्से-फरावाँकी अहतयात[3]॥

ऐ सहरे-हुस्ने-यार[4] मैं अब तुझसे क्या कहूँ?
दिलका जो हाल तेरी बदौलत है आजकल॥
इकतर्फा बेखुदीका है आलम कि इश्कमें।
तकलीफ आजकल है न राहत है आजकल॥

हमपर तेरी निगाह जो पहले थी अब नही।
सो भी न कुछ दिनोंमें रहे तो अजब नही॥

---

[1]देखनेके अभिलाषी, [2]कष्ट सहनेकी क्षमता, [3]अधिक वस्तुका आदर, चौकसी, [4]प्रेयसीके रूपका जादू।

'हसरत' जफ़ायेयार तो इक आम थी अदा।
इजहारे-इल्तफ़ात मगर बेसबब नहीं॥

उसीसे छुपते है होती है जिसपर उनकी नजर।
अगर यही है तो उम्मीदवार हम भी है॥

मुझमें ताबे-जमाले-यार कहाँ?
शौक उन्हे मेरे रूबरू न करे॥

उनके कदमोपै रख दिया सरे-शौक।
हम यह क्या बेखुदीमें कर गुजरे?

शबे-फ़ुरकतमें याद उस बेखबरकी बार-बार आई।
भुलाना हमने भी चाहा, मगर बेअख़्तियार आई॥

आग़ाजे आशिकी[1] था, जोशो-ख़रोश यकसर।
या इन्तहायेगम है, हैरानी-ओ-ख़मोशी॥

१९१७-१९१८ ई०

इसकी बात और है पायें जो हम इसमें भी मजा।
आपने तो न दिया कुछ भी अजीयतके[2] सिवा॥

उनको याँ वादेपै आ लेने दे ऐ अब्रे-बहार!
जिस कदर चाहना फिर बादमें बरसा करना॥
कुछ समझमें नहीं आता कि यह क्या है 'हसरत'!
उनसे मिलकर भी न इजहारे-तमन्ना करना॥

नजर फिर न की उसपै दिल जिसका छीना।
मुहब्बतका यह भी है कोई करीना?

---

[1]प्रारम्भिक प्रेमासक्ति; [2]कष्टके।

हसरत मोहानी

'हसरत' फिर और जाके करें किसकी बन्दगी ?
अच्छा, जो सर उठायें भी उस आस्तांसे हम ।।

पूछते हैं वह कि "हमसे, तेरी ख्वाहिश है सो क्या ?"
दिलमें जो-जो कुछ हैं मेरे, अब मैं उनसे क्या कहूँ ?

खुदा जाने यह अपना हाल क्या है हिजरेजानाँमें ।
कि आहें लबतक आती हैं, न अश्क आँखोसे बहते हैं ।।
खमोशीकी अजब यह गुफ्तगू है वस्लमें बाहम ।
न कहते हैं वोह कुछ हमसे, न हम कुछ उनसे कहते हैं ।।

हाल खुल जायेगा बेताबिये-दिलका 'हसरत' ।
बार-बार आप उन्हे शौकसे देखा न करें ।।

शौक जब हदसे गुजर जाय तो होता है यही ।
वरना हम और करमे-यारकी परवा न करे ।।

हविसेदीद[1] मिटी है, न मिटेगी 'हसरत' ।
देखनेके लिए चाहो उन्हे जितना देखो ।।

हर नामेने उन्हींकी तलबका दिया पयाम ।
हर साजने उन्हींकी सुनाई सदा[2] मुझे ।।
१९१८-१९२२ ई०

शिकवये-गम तेरे हुजूर किया ।
हमने बेशक बड़ा कुसूर किया ।।

नादिम हूँ जान देकर, आँखोको तूने जालिम !
रो-रोके बाद मेरे क्यो लाल कर लिया है ?

---

[1]देखनेकी तृष्णा; [2]आवाज़ ।

देख ले अब भी कहीं आकर जो वोह ग़फ़लतशआ़र ।
किस कदर हो जाय मर जानेमें आसानी मुझे ।।

१९२२-१९२३ ई०

जान दें दी पहुँचके उनके हुज़ूर ।
हमने और उनसे कुछ कहा न सुना ।।

दिले-मजबूर भी क्या शै है कि दरसे अपने ।
उसने सौ बार उठाया तो मैं सौ बार आया ।।

सब्र मुश्किल है, आरज़ू बेकार ।
क्या करें आशिकीमें क्या न करें ।।

इक यह भी हक़ीकतमें है शानेकरम उनकी ।
ज़ाहिरमें वोह रहते हैं जो हर वक़्त ख़फ़ा-से ।।

मेरा इश्क़ भी ख़ुदगरज़ हो चला है ।
तेरे हुस्नको बेवफ़ा कहते-कहते ।।

१९२३ ई०

हम शिकवये-फ़लक ही करेंगे हुज़ूरे-दोस्त ।
ज़ाहिर न होने देंगे वहाँ भी कुसूरे-दोस्त ।।

अहदे-यक-उम्रे-फ़रागतसे भी ख़ुशतर गुज़रा ।
वोह जो इक लहज़ा तेरी यादमें हमपर गुज़रा ।।

तुझसे अब मिलके तअ़ाज्जुब है कि अरसा इतना ।
आजतक तेरी जुदाईका यह क्योंकर गुज़रा ।।

आपको आता रहा मेरे सतानेका ख़याल।
सुलहसे अच्छी रही मुझको लंड़ाई आपकी॥*

१९२४ ई०

कदमोपै उनके रखके सर रफअ् मलाल[1] कर दिया।
हिम्मते-उज्रख्वाहने[2] आज कमाल कर दिया॥

चलो जान देके 'हसरत' हुई खूब गमसे फुरसत।
वोह कभी न तुमसे मिलते यूँ ही सुबहोशाम करते॥

१९२५-३४ ई०

करनेको तो मैं अहद करूँ तर्के-हविसका[3]।
पर दिलसे कहूँ क्या जो नहीं है मेरे बसका॥

हो रही है सबाहे-इश्कतुलू[4]।
हो चले हैं चरागे-अक्ल खमोश॥

तुझको ऐ महवे-तगाफुल[5] मेरी परवा ही नही।
हाले-दिल किससे मैं कहता, तूने पूछा ही नहीं॥

१९३५-१९४० ई०

किस्मते-शौक आजमा न सके।
उनसे हम आँख भी मिला न सके॥
हम तो क्या भूलते उन्हे 'हसरत'!
दिलसे वोह भी हमें भुला न सके॥

---

*वोह दुश्मनीसे देखते हैं, देखते तो हैं।
मैं शाद हूँ कि हूँ तो किसीकी निगाहमें॥
—आतिश

[1]मलाल दूर कर दिया, [2]क्षमा माँगनेके साहसने, [3]तृष्णा-त्यागका; [4]प्रेमरूपी पौ फट रही है; [5]उपेक्षा-लीन।

थी कभी याद उनकी वजहे-सकूँ।
अब किसी हालमे करार नही॥

१९४१-१९५० ई०

उस शोखका शिकवा किया, 'हसरत' यह तूने क्या किया ?
इससे तो ऐ मर्देखुदा ! बहतर था मर जाना तेरा॥
यह किसके इजजेतमन्नाका[1] पास है कि वोह शोख।
ब-ज़ोमेनाज़[2] भी दामन छुड़ा नही सकता॥

रौनकेदिल यूँ बढा ली जायगी।
गमकी इक दुनिया बसा ली जायेगी॥
दिल न तोड़ो 'हसरते'-नाकामका।
ज़ुल्फ़ तो फिर भी बना ली जायगी॥

खुद फरामोशियोमें[3] भी तो हमें।
भूल जाना किसीका याद रहा॥

बदगुमाँ आप हैं क्यो, आपका शिकवा है किसे ?
जो शिकायत है हमे गर्दिशे-ऐयामसे है॥

पैमाने-वफ़ाके ईफाका[4] हम उनसे तकाज़ा भूल गये।
इसका भी तो अब अहसास नहीं, क्या याद रहा क्या भूल गये॥

'हसरत'की तमाम गजलोकी सख्या ७७१ होती है। जिनमे ३८३ गजले कैद या नजरबन्दीकी हालतमे लिखी गई थी।

'हसरत'की पहली गजल जो उन्होने १२ या १३ सालकी उम्रमे सबसे पहले कही—

---

[1]नम्रतापूर्ण अभिलाषाका, [2]अभिमानका बल रखते हुए; [3]अपनेको भूले रहनेपर भी; [4]नेकी करनेके वायदेका।

मैं तो समझा था कयामत आ गई।
खैर फिर साहब सलामत हो गई॥
मसजिदोंमें कौन जाये वायजा !
अब तो इक बुतसे इरादत हो गई॥
जब मैं जानूँ दिलमें भी आओ न याद।
गरचे जाहिरमें अदावत हो गई॥
उनको कब मालूम था तर्जे-जफा।
गैरकी सुहबत कयामत हो गई॥
इश्कने उसको सिखा दी शायरी।
अब तो अच्छी फिक्रे 'हसरत' हो गई॥

ओर यह अन्तिम गजल उन्होंने मृत्युसे छ माह पूर्व २० नवम्बर १९५०को लखनऊमें कही थी—

शौक कि दादेहया मिलती नही।
वोह निगाहे-आश्ना मिलती नहीं॥
शेवये-अहले-रियासे जीनहार।
खूए-अरबाबे-सफा मिलती नहीं॥
दीदनी है यह मुरव्वत हुस्नकी।
जुर्मे-उल्फतकी सजा मिलती नहीं॥
उनसे मिलनेकी हविसमें शौकको।
ढूँढता हूँ और दुआ मिलती नही।
आशिकीसे खूए-नाजे-हुस्ने-दोस्त !
बरसबीले-एतना मिलती नही॥
यह भी 'हसरत' क्या सितम है इश्कसे।
हुस्नको दादे-जफा मिलती नही॥

३१ मई १९५३ ई०]

'मीर' उर्दू-शायरीके ख़ुदाये-सुख़न समझे जाते है, और 'फानी' यास-यातके इमाम। यासयात यानी असफल और निराश-व्यक्तियोके ऐसे नेता कि जिन्हे कभी जीवनमे एक क्षणको भी सफलता और आशाकी एक भी किरण दिखाई नहीं दी। तमाम उम्र अथक परिश्रम और उद्योग करते रहे, किन्तु असफलता और निराशाके अतिरिक्त कुछ भी हाथ नही लगा। तब मजबूरन तकदीर (भाग्य)के आगे तद्बीर (पुरुषार्थ)को घुटने टेकने पडे। इस पराजयकी घुटनको 'फानी'ने यूँ व्यक्त किया है—

देख 'फ़ानी' वोह तेरी तद्बीरकी मैयत[1] न हो।
इक जनाज़ा[2] जा रहा है, दोशपर[3] तकदीरके ॥

तमाम उम्र हाथ-पाँव मारते गुज़र जाये, फिर भी किनारा हाथ न आये, तब छट-पटाकर डूब जानेके अतिरिक्त अन्य उपाय भी क्या है ?

कुछ आस्तिक कहेगे कि 'फानी'ने ऐसे घोर संकटके समय ईश्वरको पुकारा होता तो निश्चय ही बेड़ा पार हो जाता। फ़ानीने यह भी करके

---

[1]अर्थी, [2]शव; [3]कन्धेपर।

देख लिया। वे जीवनभर आस्तिक बने रहे, घोर सकटके क्षणोमे भी वे खुदाको नही भूले। उनका दृढ विश्वास था कि खुदा रहीम है और उसकी रहमत कभी-न-कभी उनपर भी होगी। लेकिन मरते दमतक भी रहमतका सहारा जब नही मिला तो धीरजका बॉध टूट गया और उसी बेकलीमे उनके मुँहसे निकल गया—

या रब ! तेरी रहमतसे मायूस नही 'फानी'।
लेकिन तेरी रहमतकी ताखीरको क्या कहिये[1] ?

आपदाओके भँवरमे जब फानीकी जीवन-नौका चक्कर काट रही थी, उनकी सगिनी और युवा कन्या चल वसी, जो बच रहे उनको क्षणभर भी निराकुल न देख सके। यह वोह मनोव्यथा है कि इस टीसका अनुभव भुक्त-भोगी ही कर सकता है। 'मीर' तो एक कल्पना ही करके रह गये कि उन-जैसा बदनाम मद्यप भी मस्जिदका इमाम वन गया है—

मस्जिदमें इमाम आज हुआ आके वहाँसे।
कलतक तो यही 'मीर' खराबात-नशी था॥

खराबात (मद्यालयो)के मीर (सरदार) रहे तो क्या, और मस्जिदमे इमाम[2] बने तो क्या ? इससे विगडता-वनता क्या है ? लेकिन 'फानी' तो जीवनभर असफलताओ और निराशाओसे द्वन्द्व करते रहे और एक क्षणको भी विजयी न हुए, इसीलिए उर्दू-आलोचक उन्हे यासयातका इमाम कहते है।

---

[1]कौन कम्बख्त तेरी दयालुता और दीनवन्धुत्वमे सन्देह करता है ? हमे तो आशा ही नही, पूर्ण विश्वास है कि तू अपनी रहमतका हाथ हमारे लिए भी बढायेगा। लेकिन इतना जो विलम्ब (ताखीर) हो रहा है, इसको क्या कहा जाय ? क्या हम डूब जायेगे तब.. ?

[2]धार्मिक नेता, जिसके पीछे खडे होकर लोग नमाज पढे।

यासयातका इमाम तो वह भी कहला सकता है, जो असफल और निराश व्यक्तियोमे आशाका सचार करे, कर्तव्य-क्षेत्रमे डटे रहनेके लिए उत्साहप्रद भावना भरे। लेकिन 'फानी' ऐसे इमाम नही है, अपितु किसी व्यक्तिमे आशा-उत्साहका कोई अकुर रह भी गया हो, तो उनकी इमामत (नेतृत्व) उसे जड-मूलसे उखाड फेकती है, उसी अर्थमे वे यासयातके इमाम है।

यही कारण है कि कुछ आलोचक उनकी जीवितावस्थामे ही यह दोषारोपण करने लगे थे कि 'फानी' हर वक्त रोते-विसूरते रहते है। उनकी प्रेम-ज्वाला ठडी पड गई है। गमसे घबराकर हर वक्त मौतकी कामना रखते है। उनकी शायरीमे व्यक्तिगत रोने-झीकनेके अतिरिक्त और रखा ही क्या है ? हाय-हाय करना, छाती पीटना, विधवाओकी तरह शोकमग्न रहना, विलखते रहना, उनका स्वभाव है। लखनवी शायरोकी तरह वह भी प्रेमको एक रोग समझते है। उनकी शायरीमे जनाज़ा, मैयत, कफन, लहद, मजार, शमा, परवाना आदि शब्दोकी भरमार रहती है। 'जोश' मलीहाबादी[1] तो उन्हे मानवतासे गिरा हुआ कहनेमे भी सकोच नही करते, क्योकि मनुष्य होकर जो गमोसे घबरा उठे, उसे वे मनुष्य नही, मनुष्यताका अभिशाप समझते है।

किसी हालतमे उक्त आलोचनाएँ ठीक है, किन्तु एक ही कॉटेपर धान और मोती नही तोले जा सकते। हर व्यक्तिके जीवनके भिन्न-भिन्न पहलू होते है, और भिन्न-भिन्न वातावरणमे रहने-सहनेके कारण जुदा-जुदा आचार-स्वभाव होते है। रामायणका पाठक महाभारतके कौरव-पाण्डवोमें भी भरत-राम-जैसा स्नेह-सम्बन्ध देखना चाहेगा तो निराशाके अतिरिक्त कुछ भी हाथ नही लगेगा। हर शायर 'गालिब' और 'जोश' नही

---

[1]'जोश' मलीहाबादीका परिचय 'शायरीके नये दौर' नामक पुस्तकमे दिया गया है, जो कि शीघ्र छपेगी।

हो सकता। न हर शायर 'मीर' और 'फानी' जैसा दर्दीला दिल पा सकता है। प्रारम्भमे 'फानी' भी 'गालिब'से प्रभावित नज़र आते है, जैसा कि इन चन्द अशआरसे आभास मिलता है—

ग़ालिब— हस्तीके मत फरेबमे आजाइयो 'असद'!
आलम तमाम हलकये-दामे-ख़याल है॥
फ़ानी— हर मुज़दए-निगाहे-गलत जलवा खुदफरेब।
आलम दलीले गुमरहीए-चश्मोगोश था॥

गालिब— है ग़ैब-गैब जिसको समझते है हम शहूद।
है ख्वाबमे हनूज जो जागे है ख्वाबमे॥
फ़ानी— तजल्लियाते-वहम है मुशाहिदाते-आबो-गिल।
करिश्मये-हयात है ख़याल, वोह भी ख्वाबका॥
एक मुअम्मा है समझनेका न समझानेका।
ज़िन्दगी काहेको है? ख्वाब है दीवानेका॥

गालिब— हाँ खाइयो मत फरेबे-हस्ती।
हर चन्द कहे कि है, नही है॥
फ़ानी— है कि 'फानी' नही है क्या कहिए।
राज है बेनियाजे-महरमे-राज॥

गालिब— न गुले-नग्मा हूँ, न परदयेसाज।
मै हूँ अपनी शिकस्तकी आवाज॥
फ़ानी— हूँ, मगर क्या यह कुछ नही मालूम।
मेरी हस्ती है गैबकी आवाज॥

गालिब— लो वोह भी कहते है कि "यह बे-नंगो-नाम है"।
यह जानता अगर तो लुटाता न घरको मै॥
फ़ानी— बहला न दिल, न तीरगीये-शामे-गम गई।
यह जानता तो आग लगाता न घरको मै॥

गालिब— छोड़ा न रश्कने कि तेरे घरका नाम लूँ।
हर-एकसे पूछता हूँ कि जाऊँ किधरको मैं ॥
फानी— वोह पाये-शौक दे कि जहत-आश्ना न हो।
पूछूँ न खिज्रसे भी कि जाऊँ किधरको मैं ॥

ग़ालिब— उग रहा है दरो-दीवारसे सब्जा 'ग़ालिब'!
हम बयाबाँमे है और घरमें बहार आई है ॥
फ़ानी— याँ मेरे कदमसे है वीरानेकी आबादी।
वाँ घरमें खुदा रक्खे आबाद है वीरानी ॥

ग़ालिब— मेरी तामीरमें मुज़मिर है इक सूरत ख़राबीकी।
हयूला बर्के-ख़िरमनका है, ख़ूने-गर्म दहक़ाँका ॥
फानी— तामीरे-आशियाँकी हविसका है नाम बर्क़।
जब हमने कोई शाख़ चुनी शाख़ जल गई ॥

ग़ालिब— हो चुकी 'ग़ालिब' बलाएँ सब तमाम।
एक मर्गे-नागहानी और है ॥
फ़ानी— अपनी तो सारी उम्र ही 'फानी' गुज़ार दी।
इक मर्गे-नागहाँके गमे-इन्तज़ारने ॥

'गालिब' और 'फानी'मे अन्तर यही है कि दोनो आपदाओकी भट्टीमें जीवनभर सुलगते रहते है और अन्तमे राख हो जाते है। लेकिन 'गालिब' तब भी मुसकराते रहते है, तीखे व्यंग कसते है, और ऐसा मुँह चिढाते है कि आपदाये भी झेप-झेपकर रह जाती हैं—

न लुटता दिनको तो, कब रातको यूँ बेख़बर सोता।
रहा खटका न चोरीका, दुआ देता हूँ रहज़नको!

है किसीमे ऐसी हिम्मत कि सर्वस्व लुट जाये, फिर भी आह न करे, उलटा चोरका आभार ही माने? अपने उंजाड घरको देखकर कितना तीखा व्यग करते हैं—

घर हमारा जो न रोते भी तो वीराँ होता।
बहर गर वहर न होता तो वयाँवा होता॥

[हमारा घर तो उजाड होना ही था, फिर रो-रोकर उसे आँसुओ-द्वारा हमने स्वय ही डुवो दिया तो क्या बुरा किया ?]

कम किरायेके टूटे-फूटे मकानमे रहते है। उसकी दीवारोपर काई जम गई है। छतो और मुँडेरोपर घास उग आई है। जानते है कि निर्धनताके कारण ऐसे मकानमे रहना पड रहा है, किन्तु अपनी इस वेवसीपर आँसू न वहाकर किस खूवीसे मुँह चिडाते है कि मकान-मालिकने यह शेर सुना होगा तो अपना सर पीट लिया होगा—

उग रहा है दरो-दीवारपै सब्जा 'ग़ालिव' !
हम वयावाँमें है और घरमें वहार आई है ॥

घास और काईको 'सब्जा' और घरकी जीर्णताको 'वहार' कहना गालिवका ही कलेजा है।

दु ख-दरिद्रतामे जीवन व्यतीत करते-करते खयाल आया कि अगर खुदा मुझे लोक और परलोक दोनो प्रदान कर दे तो क्या हो ? चट स्वाभिमानी हृदय घृणासे भर आया, कि जिस खुदाने एक लमहेको सुख-चैनकी साँस नही लेने दी, उसका दिया हुआ अव क्यो स्वीकृत किया जाय ? लेकिन अपनी वजअ-कतअकी शराफतके कारण 'नही' कहनेका साहस भी नहीं होता, सकुचाकर रह जाते है—

दोनों जहान देके वोह समझा कि खुश हुआ।
याँ आ पड़ी यह शर्म कि तकरार क्या करें॥

लेकिन 'फानी' दु खकी भट्टीमे जलते हुए 'गालिव'की तरह मुसकरा नही सकते थे। उनका हृदय जिन परमाणुओसे वना था, उनमे मुसकानके अणु नहीं थे। 'फानी' अपनी व्यथा-पीड़ाके कारण 'गालिव'के वजाय

'मीर'के अधिक समीप मालूम होते है। उनके बहुतसे अशआर मे 'मीर'का धोका होता है। ऐसे चन्द शेर दिये जाते है—

'फ़ानी'को या जुनूँ है या तेरी आरजू है।
कल नाम लेके तेरा दीवानावार रोया॥

नाला क्या ? हॉ इक धुऑ-सा शामे-हिज्र।
बिस्तरे-बीमारसे उट्ठा किया॥

आया है बादे-मुद्दत बिछड़े हुए मिले है।
दिलसे लिपट-लिपटकर गम बार-बार रोया॥

नाजुक है आज शायद, हालत मरीजे-गमकी।
क्या चारागरने समझा, क्यो बार-बार रोया ?

गमके टहोके कुछ हो बलासे, आके जगा तो जाते है।
हम है मगर वह नीदके माते जागते ही सो जाते है॥

महवे-तमाशा हूँ मै या रब ! या मदहोशे-तमाशा हूँ।
उसने कबका फेर लिया मुँह अब किसका मुँह तकता हूँ॥

गो हस्ती थी ख्वाबे-परीशॉ नीद कुछ ऐसी गहरी थी।
चौंक उठे थे हम घबराकर फिर भी ऑख न खुलती थी॥

फस्ले-गुल आई, या अजल आई, क्यो दरे जिन्दॉं खुलता है ?
क्या कोई वहशी और आ पहुँचा या कोई कैदी छूट गया॥

या कहते थे कुछ कहते, जब उसने कहा—"कहिये"।
तो चुप है कि क्या कहिये, खुलती है जबॉं कोई ?

यहॉ यह कहा जा सकता है कि 'फानी' उम्रभर जलते-भुनते रहते, लेकिन उन्हे अपने दिलकी टीस शायरीमे बखेरकर पाठकोके हृदयको द्रवित करने और उन्हे निराशावादका पाठ देनेका क्या अधिकार था ?

उन्हे तो अपने रिसते हुए नासूरपर मरहम लगाकर डब-डबाई आँखोंके आँसू पीकर जाहिरामे मुसकराते रहना चाहिए था।

दिलमें हज़ार ग़म हों, जबींपर शिकन न हो

लेकिन शायरी चित्र-जैसी कला नही कि मनोभाव दबाकर फर्माइशके अनुसार चित्रित की जा सके। लाख प्रयत्न किये जाये, शायरके कलाममे उसके हृदयगत भाव व्यक्त हुए बगैर रह नही सकते। 'गालिब'ने लाख चाहा कि वे हृदयमे सुलगते ज्वालामुखीको दबाकर जीवनभर मुसकराते रहे और व्यगोक्तियाँ कसते रहे। मगर यह उनसे भी बराबर नही निभ सका, और उनकी हृदयगत आग उनके चारो ओर फैले बगैर नही रह सकी—

दिलमें ज़ौके-वस्ल-ओ-यादे-यार तक बाकी नहीं।
आग इस घरको लगी ऐसी कि जो था जल गया॥

किससे महरूमिये किस्मतकी शिकायत कीजे।
हमने चाहा था कि मर जायें, सो वह भी न हुआ॥

और जिसे माँगेमे मौत भी न मिले, वह असहाय और लाचार घुट-घुटकर जीने और मनको यह सान्त्वना देनेके अतिरिक्त और कर भी क्या सकता है—

कैदे-हयात-ओ-बन्दे-गम, अस्लमें दोनो एक है।
मौतसे पहले आदमी गमसे निजात पाये क्यो?

शायरी एक दर्पण है, जिसमे अनिच्छा होते हुए भी हृदयगत भावोका प्रतिबिम्ब पडे बगैर नही रह सकता। सैयद सुलेमान नदवीके शब्दोमे—

"गज़ल लिखनेके लिए स्याही बाजारमे नही मिलती, बल्कि खूँ-चकाँ सीनेमे पाई जाती है। उसके लिए ज़ख्मी दिल दरकार है। इसलिए 'इकबाल'ने कहा है—

मिसरयेमन क़तरयेख़ूने मनस्त ।

और 'कतरयेख़ून' शायरीमे उसी वक्त टपकता है, जब कि शायरका ख़ल़ूस उसमे कारफ़रमा हो। शेरमे शेरियत (कवित्व)के साथ-साथ तासीर (प्रभाव, असर)का होना भी जरूरी है।"[१] तासीर बग़ैर शेर निष्प्राण शरीरके समान है।

'फ़ानी'के एक-एक शब्दमे उनकी आत्मा बोल रही है । उनके कलामके अध्ययनसे उनके जीवन-पृष्ठ स्वयं उजागर हो जाते है; और यही उनकी शायरीका कमाल है । जहीरउद्दीन अहमदख़ाँ लिखते हैं—

"वही शायरी बुलन्दपाया (उच्चतम) होगी, जिसको शायरने ख़ुद महसूस किया हो। जिन्दगीकी चक्कीमे जिसने अपनेको पीसा हो, और रजो-ग़मकी भट्टीमे जिसने अपनेको सुल्गाया हो, उससे जो आवाज़ निकलती है, वही शायरी है।"[२]

'फ़ानी' इस शायरीकी कसौटीपर पूरा उतरते है, जैसा कि उनके जीवन-परिचयसे आभास मिलता है।

शौकतअलीख़ाँ 'फ़ानी' १३ सितम्बर १८७९ ई०मे बदायूँ जिलेके इस्लामनगरमे उत्पन्न हुए। वे पठान है और उनके पूर्वज शाह आलमके शासनकालमे काबुलसे भारत आये और यहाँ उच्च पदोपर प्रतिष्ठित रहे।

'फ़ानी'के परदादा नवाब बशारतख़ाँ, बदायूँ सूबेके गवर्नर थे और २०० गाँव उनकी जागीरमे थे। धीरे-धीरे जागीर खिसकती गई और नौबत यहाँतक आ पहुँची कि आपके पिता मुहम्मद शुजाअतअलीख़ाँ पुलिसकी नौकरी करनेपर मजबूर हुए और उस थोडे-से वेतनमे ही अपनी सारी जिन्दगी गुज़ार गये।

---

[१] निगार अप्रेल १९४६, पृ० १०; [२] निगार अप्रेल १९४६, पृ० ११।

'फानी'ने १६०१मे वी० ए० और १६०८मे एल-एल० वी० पास किया। १६२३ तक लखनऊमे रहे, उसके वाद सन् ३२ तक आगरेमे वकालत करते रहे। कुछ अर्से वरेली और वदायूंमे भी वकालत की। जव कही भी प्रैक्टिस न चली, तव हैदरावादके प्रधान मत्री महाराजा किशनप्रसाद 'शाद'ने महरवानी फरमाकर हैदरावाद बुला लिया। मगर वहाँ भी अभाग्यने साथ नही छोड़ा। वहाँ जाकर जिन असुविधाओ और विघ्न-बाधाओका सामना करना पडा होगा, उसका कुछ आभास निम्न पत्रसे होता है, जो कि उन्होने २८ जून १६३३को अपने एक सम्वन्धीको लिखा था—

"मेरा तकर्रुर (नियुक्ति) नही हुआ है, देखिये कव होता है ? और कहाँ ? या गालिवन होता भी है या नही।"

'फानी'को वहाँ मुल्की और गैरमुल्की झगडोके कारण भी परेशानी उठानी पडी।[1] आखिर राम-राम करके फानी-जैसे शायरको वहाँके एक हाईस्कूलकी हेडमास्टरी नसीव हुई।

इसी अर्सेमे उनकी जीवन-सगिनी और युवा पुत्री चल वसी। यहाँ तक कि उनके वहाँ एकमात्र हितैषी महाराजा किशनप्रसाद भी स्वर्गस्थ हो गये। इसे भाग्य-रेखके अतिरिक्त और क्या कहा जाय ? वकौल 'जिगर' मुरादावादी—

---

[1]हैदरावादमे यह प्रान्तीय भावना वहुत पुरानी है। सरकारी नौकरियोमे मुसलमानोको तो तरजीह दी ही जाती रही है, लेकिन वहाँके मुसलमान भी यह वर्दाश्त नही करते थे कि उनके यहाँ कोई अन्य प्रान्तीय आये। हैदरावादसे वाहरके लोगोको वहाँ 'गैरमुल्की' समझा जाता है। मिर्जा 'दाग'की नियुक्तिपर भी यह एतराज़ उठा था। आज भी वह रोग ज्यो-का-त्यो वना हुआ है।

मेरे गमखानये-मुसीबतकी ।
चाँदनी भी सियाह होती है ।।

आजीविकाकी खोजमे—लखनऊ, बरेली, इटावा, आगरा, हैदराबाद—न जाने कहाँ-कहाँकी ख़ाक छानी। जहाँ भी गये असफलताओ ओर निराशाओने आगे बढकर स्वागत-सत्कार किया। 'फानी' भावुक थे, तनिक-तनिक-सी बाते उनके दिलपर चरका पहुँचाती थी। और दिल जव जख्मी होता है तो बकौल 'सीमाब'—

सितारोकी चमकसे चोट लगती है रगे-जॉपर

हैदराबादमें जिसप्रकार उन्होने दिन गुजारे, उनके बारेमे वहाँके पत्र 'पयाम'ने लिखा था—

"इस सरजमीनपर शायद ही कोई ऐसा साहबे-कमाल इस कसमपुरमीकी हालतमे दफन हुआ हो, जिस हालतमे 'फानी'ने अपनी जिन्दगीके चन्द आखिरी साल गुजारे।"

शेरगोईका शौक 'फानी'को ग्यारह वर्षकी अवस्थामे ही हो गया था। यानी सबसे पहली गजल आपने १८९० ई०मे कही और २० वर्षकी आयुमे दीवान मुकम्मिल हो गया था। अफसोस कि वह नष्ट हो गया। १९०६मे दूसरा दीवान तैयार किया तो वह भी पहले दीवानकी तरह गुम हो गया। आखिर दिल बैठ गया और १९१७ तक 'फानी' दुनियाए शायरीसे रूपोश रहे। इसके वाद जलवागर हुए तो उनका पहला दीवान वदायूँसे छपा। दूसरा दीवान 'वाकियाते फानी' १९२६मे और शेष कलाम 'वजदानियात' १९४०मे प्रकाशित हुआ। वकौल किसीके—

"लुत्फतरीन अहसासात रखते हुए तवाहियो और वरवादियोका मुसलसल (निरन्तर) शिकार होना और फिर जिन्दा भी रहना एक इन्सानको फ़ानी न वना दे तो और क्या तवक्कोह (आशा) हो सकती है? हवादस-ओ-सदमात (मुसीवते और रजोगम) इब्तदामे दर्दनाक

भी मालूम होते हैं, और नाकाबिले बरदाश्त भी। इन्सान चीखता भी है और आँसू भी बहा लेता है। लेकिन उस हिरमाँ-नसीब (असफल-निराश व्यक्ति)को क्या कहिए ? जिसके आँसू भी इन मुतवातिर और पैहम (लगातार-निरन्तर) चोटोसे खुश्क हो जाते ह। फिर उसकी मुसकराहट भी 'आह' बन जाती है। और यास (निराशा)मे उसको लुत्फ भी आता है। चुनाँचे किसी मातमकदे (शोक-गृह)के नौहा (मातम) करने-वालेसे अगर तराने-शादयाने (मगलवाद्य)की तवक्कोह (आशा) नही की जा सकती तो 'फानी'की शायरी भी यासया (निराशावादी) शायरी ही हो सकती थी।"

फानीने जब होश सँभाला तो लखनवी शायरीसे कघी, चोटी सुरमा-मिस्सी, चोली-दामन विदा हो गये थे। लखनऊकी नवाबी मिट चुकी थी। इसलिए रगीन और जनानी शायरीकी जगह मर्सिया ले रहा था। लखनऊके उरूजके दिनोमे वहाँके शायरोने जिस तत्परतासे रगीन एव खारजी शायरीके नोक-पलक सँवारे थे, उसी तेजीसे मर्सियाके मैदानमे भी कूदे। जिस घरमे शादीके नग्मोसे कान पडी आवाज सुनाई न देती हो, उस घरमे अकस्मात दुर्घटना होने पर क्रन्दन भी आकाशभेदी उठता है। मर्सियागोई रगीन शायरीकी प्रतिक्रिया थी, और यह स्वाभाविक भी था। उन दिनो लखनवी शायरोको रजो-गम गिरय-ओ-मातम, गोरे-गरीबाँ और यासो-हिरमाँके अतिरिक्त कुछ सूझता ही न था। यहाँतक कि गजलमे भी मर्सियतका रग चढ रहा था। रगीन शायरीकी तरह इसमे भी लखनवी शायरोने तकल्लुफ और कृत्रिमताको हाथसे नही छोडा।

फानीकी प्रकृति इस वातावरणके अनुकूल थी। वे इस रगसे काफी प्रभावित हुए। यद्यपि प्रारम्भमे वे गालिबके अनुयायी नजर आते है, किन्तु लखनवी मर्सियतका वातावरण उनके अधिक अनुकूल रहा। अन करुणा-व्यथा भरे बोल उनके मुँहसे अनायास निकलने लगे।

` यहाँतक कि इस पृथ्वीका स्वर्ग काश्मीर भी उनके हृदय-कमलको

नही खिला सका, वहाँका प्रसिद्ध 'निशातबाग' भी उन्हे फर्सूदा (कुम्हलाया हुआ) नजर आया—

इस बाग़मे जो कली नज़र आती है।
तसवीरे-फसुर्दगी नज़र आती है॥
कश्मीरमें हर हसीन सूरत 'फानी'।
मिट्टीमे मिली हुई नज़र आती है॥

फूलोकी नजर-नवाज़ रंगत देखी,
मख़लूककी दिल-गुदाज़ हालत देखी,
कुदरतका करिश्मा नज़र आया कश्मीर,
दोज़ख़मे समोई हुई जन्नत देखी॥

उनकी पत्नी और पुत्री मिट्टीमे मिल जाये और उनका घर जिसे वह जन्नत बनाना चाहते थे, दोज़ख बन जाये; तब हर हसीन सूरत उन्हे मिट्टीमे मिली हुई और 'जन्नत' दोजखमे समोई हुई दिखाई न दे तो और क्या दे? यही व्यथा-भरा अलाप धीरे-धीरे वह रूप लेता गया, जिसे आज 'फानी'की शायरी कहा जाता है। व्यथा रूपी दीमकसे खाये हुए उनके मनसे यही ध्वनित होगा, चाहे वह काश्मीरमे रहे या हैदराबाद-मे—

दैरमे या हरममें गुज़रेगी।
उम्र तेरे ही ग़ममें गुज़रेगी॥

और धीरे-धीरे 'फानी' रज-ओ-गमके इतने आदी हो गये है कि उन्हे सुख-चैनका तो ख्वाबो-खयाल भी नही आता। उन्हे तो अब यही आशंका खाये जाती है कि दु:खसे भरे-पूरे दिन उनके जो व्यतीत हो रहे है, वोह भी दुर्दैव कही उनसे छीन न ले।

हाँ नाखुने-गम कमी न करना।
डरता हूँ कि ज़ख्मेदिल न भर जाये ॥

और इस दुखको वे मर्दानावार आमन्त्रण देते हैं—

गैरत हो तो ग़मकी जुस्तजू कर।
हिम्मत हो तो बेकरार हो जा ॥

और इस गमको वे अपना सर्वस्व समझते हुए सगर्व कहते हैं—

चुन लिया तेरी मुहब्बतने मुझे।
और दुनिया हाथ मलकर रह गई ॥

'फानी'ने मर्सियतसे बहुत जल्द कनाराकशी करके अपना जुदागाना-रंग अख्तियार कर लिया। कही उनके यहाँ गालिब-जैसी दार्शनिकता, और कही 'मीर'-जैसा सोज़ोगुदाज़ पाया जाता है। इश्किया रंगमें भी उन्होंने अपनी मौलिक प्रतिभाका परिचय दिया है।

हूँ असीरे-फरेबे-आज़ादी[1]।
पर हैं और मश्के-हीलये-परवाज़[2] ॥

इश्क़ है परतवे-हुस्ने-महबूब[3]।
आप अपनी ही तमन्ना क्या खूब ॥

अब लबपै वोह हंगामये-फरियाद नहीं है।
अल्लाहरे तेरी याद कि कुछ याद नही है ॥

हमको मरना भी मयस्सर नहीं जीनेके बग़ैर।
मौतने उम्रे-दो रोज़ाका बहाना चाहा ॥

---

[1]स्वतन्त्रताके धोकेका कैदी, [2]पर होते हुए भी न उड़नेके लिए बहाना ढूंढना, [3]प्रेयसीके सौन्दर्यका प्रतिबिम्ब।

बिजलियाँ शाखे-नशेमनपै बिछी जाती हैं।
क्या नशेमनसे कोई सोख्ता-सामाँ[1] निकला?

'फ़ानी'की जिन्दगी भी क्या जिन्दगी थी या रब!
मौत और जिन्दगीमें कुछ फर्क चाहिए था॥

फ़ानीके चन्द मक़्ते—

किसीके गमकी कहानी है जिन्दगीए-'फानी'।
जमाना एक फसाना है, मेरे नालोका॥

खाके-'फानी'की कसम है, तुझे ऐ दश्ते-जुनूँ!
किससे सीखा तेरे जर्रोंने बयाबाँ होना?

चमनसे रुख़सते 'फानी' करीब है शायद।
कुछ अबकी बूए-कफन दामने-बहारमें है॥

किसकी कश्ती तहे-गरदाबे-फना[2] जा पहुँची?
यकबयक शोर जो 'फानी' लबे-साहिलसे[3] उठा॥

आज रोजे-विसाल 'फानी' है।
मौतसे हो रहे है नाजो-नियाज॥

'वाकयाते फानी' और 'वजदानियत' शीर्षक उनके दो सकलनोसे उनके सभी रंगके अशआर पेश किये जा रहे हैं—

तूने करम किया तो ब-उनवाने रंजेजीस्त।
गम भी मुझे दिया तो गमे-जाविदाँ न था॥

आ गई है तेरे बीमारके मुँहपर रौनक।
जान क्या जिस्मसे निकली, कोई अरमाँ निकला॥

---

[1]दग्धहृदय; [2]मृत्यु-दरियाके तलेमें; [3]किनारेसे।

रस्मेखुद्दारीसे गो वाकिफ न थी दुनिया-ए-इश्क ।
फिर भी अपना ज़ख्मेदिल शरमिन्द-ए-मरहम न था ।।

मज़ाके-तल्ख़पसन्दी न पूछ, उस दिलका—
बग़ैर मर्ग जिसे ज़ीस्तका मज़ा न मिला ।।
मेरी हयात है महरूमे-मुद्दआ-ए-हयात ।
वोह रहगुज़र हूँ जिसे कोई नक्शेपा न मिला ।।

यूँ सबको भुला दे कि तुझे कोई न भूले ।
दुनिया ही में रहना है तो दुनियासे गुज़र जा ।।

क्या-क्या गिले न थे कि इधर देखते नहीं ।
देखा तो कोई देखनेवाला नहीं रहा ।।

एक आलमको देखता हूँ मैं ।
यह तेरा ध्यान है मुजस्सिम क्या ।।

फुरसते-रंजेअसीरी दी न इन धडकोंने हाय ।
अब छुरी सैयादने ली, अब कफसका दर खुला ।।

मंज़िलेइश्कपै तनहा पहुँचे कोई तमन्ना साथ न थी ।
थक-थककर इस राहमें आख़िर इक-इक साथी छूट गया ।।

रफ़्तए-नज़र[1] हो जा, सबसे बेख़बर हो जा ।
खुल गया है राज़[2] अपना खुल न जाये राज़ उनका ।।

फरेबेजलवा और कितना मुकम्मिल ऐ मुआज़ल्लाह ।
बडी मुश्किलसे दिलको बज़्मे-आलमसे उठा पाया ।।

---

[1]उपेक्षित दृष्टि; [2]भेद ।

हाय क्या दिन हैं कि नक़्शे-सजदा है और सर नहीं ।
याद है वोह दिन कि सर था और वबालेदोश[1] था ॥

निगहे-क़हर ख़ास है मुझपर ।
यह तो अहसाँ हुआ सितम न हुआ ॥
अब करम है तो यह गिला है मुझे ।
कि मुझीपर तेरा करम न हुआ ॥

गुलमें वोह अब नहीं है जो आलम था ख़ारका ।
अल्लाह क्या हुआ वोह ज़माना बहारका ॥

तिनकोंसे खेलते ही रहे आशियाँमें हम ।
आया भी और गया भी ज़माना बहारका ॥

उसको भूले हुए तो हो 'फानी' !
क्या करोगे अगर वोह याद आया ॥

घर ख़ैरसे तकदीरने वीराना बनाया ।
सामाने-जुनूँ[2] मुझसे फराहम[3] न हुआ था ॥

बालींपै[4] जब तुम आये तो आई वोह मौत भी ।
जिस मौतके लिए मुझे जीना ज़रूर था ॥
थी उनके सामने भी वही शाने-इज़्तराब[5] ।
दिलको भी अपनी वज़अपै कितना ग़रूर था ॥

बा-ख़बर हैं वोह सबकी हालतसे ।
लाओ हम पूछ लें न हाल अपना ॥

---

[1]कन्धोका बोझ, [2]उन्मादका सामान; [3]एकत्र, [4]बीमारके सिरहाने; [5]तडपनेकी शान ।

अल्लाहरे एतमादेमुहब्बत[1] कि आजतक।
हर दर्दकी दवा है वोह अच्छा किये बग़ैर॥

निगाहें ढूँढती है दोस्तोको और नहीं पाती।
नज़र उठती है जब जिस दोस्तपर पडती है दुश्मनपर॥

न इब्तदाकी ख़बर है न इन्तहा मालूम।
रहा यह वहम कि हम हैं, सो वोह भी क्या मालूम?
यह ज़िन्दगीकी है रूदादे-मुख़्तसिर[2] 'फ़ानी'!
वजूदे-दर्दमुसल्लिम,[3] इलाज ना मालूम॥

किस जोममें है ऐ रहरवेगम[4]! धोकेमें न आना मंज़िलके।
यह राह बहुत कुछ छानी है, इस राहमें मंज़िल कोई नहीं॥

हाँ ऐ यकीनेवादा! दामन तेरा न छूटे।
यह आसरा न टूटे वोह आयें या न आयें॥

दिलमें आते हुए शरमाते हैं।
अपने जलवोमें छुपे जाते है॥

ना महरबानियोका गिला तुमसे क्या करें?
हम भी कुछ अपने हालपै अब महरबाँ नहीं॥

तसकीन[5] अजीब चाहता हूँ।
दुशमनका नसीब चाहता हूँ॥

ग़म भी गुज़श्तनी[6] है ख़ुशी भी गुज़श्तनी।
कर ग़मको अख़्तयार कि गुज़रे तो ग़म न हो॥

---

[1]प्रेम-विश्वास, [2]संक्षिप्त कहानी, [3]दर्द पूर्णरूपेण है; [4]गमकी राहपर चलनेवाले, [5]चैन, [6]नाशवान।

बहार लाई है पैगामे-इनकलाबे-बहार ।
समझ रहा हूँ मैं कलियोंके मुसकरानेको ॥

काफिर सूरत देखके मुँहसे आह निकल ही जाती है ।
कहते क्या हो ? अब कोई अल्लाहका यूँ भी नाम न ले ॥

गो नहीं जुज़-तर्के-हसरत[1] दर्देहस्तीका[2] इलाज ।
आह वोह बीमार जो आज़ुर्द-ए-परहेज़[3] है ॥

अहले-ख़िरदमें[4] इश्ककी रुसवाइयाँ न पूछ ।
आने लगी है ज़िक्रे-वफ़ासे हया मुझे ॥

या रब ! नवाये-दिलसे[5] तो कान आश्ना-से[6] हैं ।
आवाज़ आ रही है, यह कबकी सुनी हुई ॥

तर्के-तदबीरको भी देख लिया ।
यह भी तदबीर कारगर न हुई ॥
यूँ मिली हर निगाहसे वोह निगाह ।
एककी एकको ख़बर न हुई ॥
आज तस्कीने दर्देदिल 'फ़ानी' !
वह भी चाहा किये मगर न हुई ॥

उनके तो दिलसे नक़्शे-कुदूरत[7] भी मिट गया ।
हम शाद[8] हैं कि दिलमें कुदूरत नही रही ॥

ज़िन्दगी ख़ुद क्या है 'फ़ानी' यह तो क्या कहिये मगर ।
मौत कहते हैं जिसे वोह ज़िन्दगीका होश है ॥

---

[1]अभिलाषाओंके त्यागके अतिरिक्त, [2]जीवन-व्यथाका, [3]परहेज़ करते-करते दुखी, [4]अक़्लमन्दोंमें, [5]दिलकी आवाज़से, [6]परिचित-से; [7]द्वेष-भाव, [8]प्रसन्न ।

न दिलके जर्फको[1] देखो न तूरको[2] देखो।
बलाकी धुन है तुम्हे बिजलियाँ गिरानेकी॥

कलतक जो तुमसे कह न सका हाले-इज्तराब[3]।
मिलती है आज उसकी ख़बर इज्तराबसे॥

मुद्दआ है कि मुद्दआ न कहूँ।
पूछते है कि मुद्दआ क्या है?

दुश्मने-जॉ थे तो जाने-मुद्दआ क्यो हो गये?
तुम किसीकी जिन्दगीका आसरा क्यो हो गये?

जिन्दगी यादे-दोस्त है यानी——
जिन्दगी है तो गममें गुजरेगी॥

आपने अहद किया है मेरी गमख्वारीका।
अब इजाजत हो तो यह अहद मुझे याद रहे॥

मरके टूटा है कहीं सिलसिलये कैदे-हयात?
मगर इतना है कि जजीर बदल जाती है॥

शेवये-आशिकी नहीं हिज्रमें आरजूए-मर्ग।
हाँ नही जिन्दगी अजीज, मौत ही जिन्दगी सही॥

जीने भी नही देते मरने भी नहीं देते।
क्या तुमने मुहब्बतकी हर रस्म उठा डाली?

तर्के-उम्मीद बसकी बात नही।
वरना उम्मीद कब बर आई है॥

---

[1]पात्रताको; [2]एक पर्वतका नाम; [3]तड़पकी ख़बर।

मौजोंकी सयासतसे मायूस न हो 'फ़ानी' !
गरदाबकी हर तहमें साहिल नज़र आता है ॥

फूलोंसे तअ़ल्लुक तो, अब भी है मगर इतना ।
जब ज़िक्रे-बहार आया, समझे कि बहार आई ॥

कर ख़ूये-जफ़ा न यक-बयक तर्क ।
क्या जानिये मुझपै क्या गुज़र जाये ॥

वोह हमसे कहाँ छुपते ? हम ख़ुद हैं जवाब उनका ।
महमिलमें जो छुपते हैं, छुपते नहीं महमिलसे ॥

हर राहसे गुज़रकर दिलकी तरफ़ चला हूँ ।
क्या हो जो उनके घरकी यह राह भी न निकले ॥
शिकवा न कर फ़ुगाँका, वोह दिन ख़ुदा न लाये ।
तेरी जफ़ापै दिलसे जब आह भी न निकले ॥

लो तबस्सुम भी शरीके-निगहे-नाज़ हुआ ।
आज कुछ और बढ़ा दी गई क़ीमत मेरी ॥

दो घड़ीके लिए मीज़ाने-अदालत ठहरे ।
कुछ मुझे हश्रमें कहना है ख़ुदासे पहले ॥

गुल दिये थे तो काश फ़स्ले-बहार ।
तूने काँटे भी चुन लिये होते ॥

चौंक पड़ते हैं ज़िक्रे 'फ़ानी'से ।
नींद उचटती है इस कहानीसे ॥

बेज़ौक़ेनज़र बज़्मे-तमाशा न रहेगी ।
मुँह फेर लिया हमने तो दुनिया न रहेगी ॥

पछतायेंगे आप दिलको लेकर।
कमबख़्त ग़मआश्ना बहुत है॥

ज़िन्दगीकी दूसरी करवट थी मौत।
ज़िन्दगी करवट बदलकर रह गई॥

क्या बला थी अदाये-पुरसिशेयार।
मुझसे इज़हारे-मुद्दआ न हुआ॥

तेरे फ़िराक़में हालत तबाह-सी है तबाह।
न दिलपै हाथ न अब सूए-आसमाँ है निगाह॥

रस्मे-वेदादे-दोस्त आम हुई।
तल्ख़िये-ज़ीस्त भी हराम हुई॥

करमे-बेहिसाब चाहा था।
सितमे-बेहिसाबमें गुज़री॥

मिज़ाजेदहरमें उनका इशारा पाये जा।
जो हो सके तो बहरहाल मुसकराये जा॥

तू कहाँ है कि तेरी राहमें यह काबा-ओ-दैर।
नक्श बन जाते हैं मंज़िल नहीं होने पाते॥

१४ मई १९५२ ई०]

काबा-ओ-दैर

वहशत १८ नवम्बर १८८१मे जन्मे, कलकत्तेके आप निवासी हैं और भारत-विभाजनके बाद पूर्वी पाकिस्तान चले गये हैं। १९११ ई०मे आपका दीवान प्रकाशित हुआ था। आप इस्लामिया कालेज कलकत्तेमे उर्दूके प्रोफेसर रह चुके हैं। १९३१ ई०मे अग्रेज सरकारसे ख़ानबहादुरीका ख़िताब भी मिला था। आपका कलाम पुख़्ता और गहराई लिये हुए होता है।

अभी तो तेरी मायूसीसे इत्मीनान है ऐ दिल !
मुझे उस वक़्त होगा ख़ौफ जब तू शादमाँ होगा ॥

फिर नवाजिश आपकी हदसे जियादा हो गई।
फिर दिले-आफतरसीदा बदगुमाँ होने लगा ॥

मुझे अब तानये-अफसुर्दगी देता है तू ऐ दिल !
कभी तूफान था मैं भी जमाना यादकर मेरा ॥

किसीसे कहती है चितवन किसीकी।
"कि तू क्या और तेरा मुद्दआ क्या ॥"

निशाने-मज़िले-जानाँ मिले-मिले-न-मिले ।
मज़ेकी चीज है यह ज़ौके-जुस्तजू मेरा ॥

है नज़रबाज़ोमे हलचल, सब है गरमे-जुस्तजू ।
वोह परी है कौन 'वहशत' जिसका दीवाना हुआ ॥

दिलके कहनेपै चलूँ अक्लका कहना न करूँ ।
मैं इसी सोचमें हूँ, क्या करूँ और क्या न करूँ ॥

ज़रूरत तुमको क्या मुझसे तकल्लुफकी तवाज़अ्की ।
यही अन्दाज़ वोह है जो मुझे मायूस करते हैं ॥

इस दिलनशी अदाका मतलब कभी न समझे ।
जब हमने कुछ कहा है, वोह मुसकरा दिये हैं ॥*

कुछ शौक़ कर दिया है, छेड़ोसे हमने तुमको ।
कुछ हौसले हमारे तुमने बढा दिये हैं ॥

निशाने-ज़िन्दगि-ए-दिल है, बेकरारिये-दिल ।
है दिलकी मौत अगर चैन आ गया दिलको ॥

आप अपना रूये-ज़ेबा देखिये ।
या मुझे महवे-तमाशा देखिये ॥

जिससे चाहो पूछ लो तुम मेरे सोज़े-दिलका हाल ।
शमअ भी महफिलमें है, परवाना भी महफिलमें है ॥

---

*इसी ख़यालको 'सबा' अकबरावादीने किस खूबीसे व्यक्त किया है—

गलतफहमियोमे जवानी गुज़ारी ।
कभी वोह न समझे कभी हम न समझे ॥

अब ख़फ़ा होने लगे हो मुझसे हर-हर बातमें ।
तुम कि हो जाते थे दुश्मनसे ख़फ़ा मेरे लिए ।।

दोनोंने किया है मुझको रुसवा ।
कुछ दर्दने और कुछ दवाने ।।

हँसा हूँ हालपर अपने जहाँ रोनेका मौक़ा था ।
किया है शुक्रके परदेमें किस्मतका गिला मैंने ।।

है हिदायतके लिए मौजूद ख़ुद तेरा ज़मीर ।
गोशे-दिलसे सुन हक़ीक़तकी यही आवाज़ है ।।

वोह आयें या न आयें, उन्हें अख़्तियार है ।
ऐ ज़ौक़े-इन्तज़ार मैं ख़ुश हूँ कि तू तो है ।।

परवानेकी है मौतपर ऐ शमअ़ ! मुझको रश्क ।
तेरा शहीदेनाज़ तेरे रूबरू तो है ।।

हो रसाई क्या वहाँतक बस इक आसरा यही है ।
कि उन्हींको याद आये कभी अपने नातवाँकी ।।

निगार जनवरी १९४१

अल्लाहरे-ज़ोरे मजबूरी ख़ुद मुझको हैरत होती है ।
जो वार उठाना पड़ता है, क्योंकर वोह उठाया जाता है ।।
यह भी है तमाशा उल्फ़तका, जो बात है वोह नादानीकी ।
मंज़ूर नहीं है रब्त जिन्हें, रब्त उनसे बढ़ाया जाता है ।।

सरेबालीं ज़रा आजाओ तुम बीमारे-हिजराँके ।
कि इक हिचकीमें वोह कह दे कहानी ज़िन्दगी भरकी ।।

निगाहे-नाज़ तेरी मेरे हक़में इक मुअम्मा है।
समझ ही में नहीं आता कि क्या इरशाद होता है॥

गो मैं हूँ तुझसे दूर तेरी आरज़ू तो है।
तेरा पता मिले-न-मिले जुस्तजू तो है॥

बारहा बे इल्तफाती देखकर सैयादकी।
खुद-ब-खुद बेताब होकर मैं तहे-दाम आ गया॥

२० मई १९५२ ई०]

सैयाद

मिर्जा वाजिदहुसैन 'यगाना' चगेजखॉके वशजोमे-से हैं। आपके पूर्वज ईरानसे भारत आये थे और तत्कालीन सल्तनतकी तरफसे पटने (अजीमाबाद)मे कुछ जागीर प्रदान किये जानेपर वही बस गये थे। वही आपका १८८४ ई०के लगभग जन्म हुआ। उर्दू-फारसीकी शिक्षाके अतिरिक्त १९०३मे आपने मैट्रिक परीक्षा भी पास की। स्कूलमे सदैव प्रथम रहे और वजीफे, तमगे, इनाम आदि हमेशा पाते रहे।

शायरीमे आपको 'शाद' अजीमाबादी-जैसे बडे उस्तादका शिष्य होनेका गौरव प्राप्त हुआ। १९०५ ई०मे आप स्वास्थ्य-सुधारकी दृष्टिसे लखनऊ गये थे, वहाँका वातावरण आपको इतना पसन्द आया कि वही सकूनत अख्तियार कर ली और १९१३ ई०मे वहीके एक प्रतिष्ठित परिवारकी कन्यासे शादी भी हो गई। उन दिनो आप 'यास' उपनामसे शायरी करते थे और 'यास' अजीमाबादी नामसे प्रसिद्ध थे।

जिन दिनो आप लखनऊ पहुँचे, उन दिनो लखनऊसे 'नासिख' और 'अमीर मीनाई'का रंग तो उड चुका था, मगर 'मीर'-ओ-'गालिब'की गमो-दर्दवाली शायरीका असफल अनुकरण हो रहा था। मर्सियाकी शायरीका बोल-बाला था। जिसे देखो वही रोने-बिसूरनेकी शायरीमें

लीन मालूम होता था। यह गलत अनुसरण 'यास'को न भाया, 'यास'ने मुशायरोमे शिरकत फर्माकर और अखबारोमे निरन्तर लिखकर अपने रगकी धूम मचा दी। आपके कलाममे 'मीर'-ओ-'आतिश'के रगकी पुट होती थी। कहनेका और बयान करनेका अपना निजी अन्दाज था। चन्द ही दिनोमे 'यास'का तूती बोलने लगा। लखनवी उस्तादोको यह कब सहन हो सकता था, उन्होने बहुत जोरोसे मुखालफत शुरू कर दी। 'यास' इन विरोधोसे कब दबनेवाले थे। 'यास'ने हार मानना कभी सीखा ही नही। आप स्वभावत जिद्दी, स्वाभिमानी और अहमन्य है। अतः आपने डटकर मुकाबिला ही नही किया, अपितु वोह दन्दान शिकन जवाबी हमले किये कि रहे नाम साईका।

उन्ही दिनो आपका 'नश्तरे-यास' प्रकाशित हुआ तो लखनवी उस्ताद और भी चराग-पा हो गये। परिणामस्वरूप कागजी जग छिड गई। १९१५ ई०मे आपने शायरी सम्बन्धी एक पत्रका प्रकाशन प्रारम्भ किया तो दबी आग फिर भडक उठी। लेकिन मिर्जाने तनिक भी चिन्ता न की और अपनी टेकपर बराबर अडिग रहे।

इस निरन्तरके विरोध, उपेक्षा, घृणा आदिके कारण मिर्जामे एक विचित्र प्रकारकी प्रतिक्रिया अकुरित हो उठी। आप प्रारम्भमे मिर्जा 'गालिब'के प्रशसक थे, किन्तु लखनवी उस्तादोकी अन्धी श्रद्धा-भक्ति और असफल अनुकरणकी प्रतिक्रिया स्वरूप आप मिर्जा गालिबके घोर विरोधी बन बैठे। यहाँतक कि मिर्जा गालिब आपके जन्मसे पूर्व ही परलोक सिधार चुके है, और उम्रके लिहाजसे भी आपके दादाकी उम्रोके रहे होगे, फिर भी आप अपनेको 'गालिब'का चचा अथवा गालिब-शिकन कहने लगे और यह प्रतिक्रिया यहाँतक वढी कि आपने सैकडो गजलोमे इन शब्दोका प्रयोग किया है, और करते रहते है। यथा—

> भोण्डापन है मजाके-गालिबमें रचा।
> मिर्जाका कलाम अपनी न नजरोमें जचा॥

महफिलमे है अब रंगे-'यगाना' ग़ालिब।
वोह कौन 'यगाना' ? वही 'ग़ालिब'के चचा ॥

'यास'के बजाय अब 'यगाना' उपनामसे शेर कहने लगे। निरन्तरके विरोधोके कारण लखनऊका वातावरण इतना विषाक्त हो गया कि आप लाहौर चले गये और वहाँ उर्दू-साहित्यके प्रसिद्ध सम्पादकाचार्य्य तथा आलोचक मौलाना ताजवर नजीबाबादीके साथ साहित्यिक अनुष्ठानमे लग गये। वहाँ भी पजाबियोकी प्रान्तीय भावनाओके कारण आप स्थिर न रह सके और लखनऊ लौट आना पडा। लखनऊ पहुँचनेपर अहले लखनऊके पुराने ज़ख़्म फिर हरे हो गये, और वे आपको हर तरहसे मिटानेको कटिबद्ध हो गये। आख़िर महाराजा किशनप्रसाद 'शाद' प्रधान मंत्रीके निमत्रणपर आप हैदराबाद चले गये और वहाँ किसी ज़िलेमे सब-रजिस्ट्रार बना दिये गये।

मिर्ज़ा 'यगाना' सर्वधर्म समभावी है। साम्प्रदायिकतासे कोसो दूर है। फर्माया है—

कृशनका[1] हूँ मै पुजारी अलीका बन्दा हूँ।
'यगाना' शानेख़ुदा देखकर रहा न गया ॥

मिर्ज़ा किसी बाहरी ख़ुदाके कायल नही, वह तो अपने मनमन्दिरके पुजारी हैं। जो ईश्वर अपने घटमे विराजमान है, उसे बाहर खोजना सरासर भूल है—

आपसे बाहर चले हो ढूँढने।
आह ! पहला ही कदम झूठा पडा ॥

दिखावटी पूजा-उपासनासे आपको बेहद चिढ है—

कलमा पढ़ूँ तो क्यों पढ़ूँ, सबकी नज़रमें क्यो चढ़ूँ ?
यादे-ख़ुदा तो दिलसे है, दिलसे ज़बाँतक आये क्यों ?

---

[1]शुद्ध नाम कृष्ण।

मिर्ज़ा मज़हबी दीवानगीको इन्सानियतके लिए बोझ समझते हैं—

दुनियाके साथ दीनकी बेगार ! अलअमाँ।
इन्सान आदमी न हुआ जानवर हुआ ।।

और पुरुषार्थ छोडकर जो हाथपर हाथ धरे ईश्वरके भरोसे बैठनेके आदी है, उनके समक्ष ईश्वरकी सर्वशक्तिमानताकी नि सारता बताते हुए फर्माया है—

आईको टाल दे जभी जानें।
दम-ब-ख़ुद है तो फिर ख़ुदा क्या है ।।

छैल-छबीले विलासी युवकोपर कितना मीठा व्यग किया है—

वक़्त जिसका कटे हसीनोमें।
कोई मर्दाना काम क्या करता ?

यह नौजवानी, यह नामुरादी।
छाई है मुँहपर यह मुर्दनी क्या ।।

मिर्ज़ा सबके हितमे अपना हित समझते है। वे आपा-धापीके कायल नही। यहाँतक कि वह एक ही नावमे बैठे मुसाफिरोको डूबते देखकर स्वय भी डूब जाना श्रेष्ठ समझते है—

मुझे ऐ नाख़ुदा ! आख़िर किसीको मुँह दिखाना है।
बहाना करके तनहा पार उतर जाना नहीं आता ।।

महात्मा गाधी जीवनभर हिन्दू-मुस्लिम एक्यका प्रयत्न करते रहे, परन्तु साम्प्रदायिक लोग सदैव अडगा लगाते रहे, इसी भावको मिर्ज़ा यूँ व्यक्त करते है—

सुलह ठहरी तो है बिरहमनसे।
कही मज़हब अडा न दे कोई टाँग ।।

इन्सान, इन्सानके आगे हाथ फैलाये, इस दयनीय स्थितिसे खीजकर मिर्जाको कहना पड़ा—

ख़्वाह प्याला हो या निवाला हो।
बन पड़े तो झपट ले, भीक न माँग॥

ईश्वर और ख़ुदाके नामपर ससारमे जैसे वीभत्स कृत्य हुए है, वैसे कार्य नारकीयो, दोज़ख़ियो और दरिन्दोसे होने सम्भव ही नही। धर्म-मजहबकी रक्षाके लिए जितने मानवोकी हत्याये होती रही है, यदि उन सबकी हड्डियाँ एकत्र की जा सकती तो सुमेर पर्वतको अपनी इस ऊँचाईका इस कदर गर्व न रहता। ईसाइयोके रोमन कैथोलिक और प्रोटेसटैण्टोका पारस्परिक वध, आस्तिको द्वारा नास्तिकोका विध्वन्स, और अहले इस्लाम-का गैर इस्लामियोके ख़िलाफ जहाद, पुराने पोथोमे पडे कराह रहे थे कि भारत-विभाजनके वक्त ईश्वर-ख़ुदाके लाडले बेटोने उनके नामपर जो लाखो मनुष्योकी वलि दी है और लाखो नारियोकी जो अस्मतदरी की है, उसके समक्ष दरिन्दोकी क्रूरता भी पानी-पानी हो गई। स्वयं ख़ुदा भी यह महसूस करने लगा होगा कि मैने दुनिया बनाकर घोर अपराध ही किया है—

तख़लीके-कायनातके दिलचस्प जुर्मपर।
हँसता तो होगा आप भी यज़दाँ कभी-कभी॥

—अदम

ऐसे ही मजहबी उन्मादसे तग आकर मिर्जा 'यगाना'ने अपने किसी मुसलमान दोस्तको कुछ ऐसे शब्द लिख दिये, जो इस्लामके लिए अपमान जनक समझे गये। बस फिर क्या था ? ख़ुदाके बन्दो और रसूलके इन लाडलोने ७० वर्षके बूढे यगानाको घेर लिया। तारकोलसे मुंह काला करके, जूतोका हार डालकर उनको गधेपर बिठाना चाहा; मगर गधेको

मनुष्योकी यह हरकत पसन्द न आई, और वह स्वय शर्माकर भाग खडा हुआ। इस वाकयेसे मज़हवी दीवाने क्या सबक लेते, उनका इन्तकाम और भडक उठा, और उन्होने एक और गधेको पकड़कर रिक्शामे जोता और मिर्जा 'यगाना'को उसपर बिठाकर लखनऊ भरमे घुमाया गया। थोडी-थोडी दूरपर उन्हे रिक्शापर खडे होनेको मजबूर किया जाता था, ताकि जनता उनपर थूक सके, लानत-न्योछावर कर सके और यह सब दिनदहाडे उत्तर प्रदेशकी राजधानी लखनऊमे इसी अप्रेल १९५३ मे पुलिस-की चौकियोके सामने हुआ। मानवताका शव निकलता रहा, सभ्यता बैठी सर पीटती रही, मगर ख़ुदाके बन्दे ख़ुदाको ख़ुश करनेमे मसरूफ रहे।

सत्य बोलनेपर भी अनेक बाधाओ-मुसीबतोका सामना करना पड़ता है यह मिर्ज़ा यगाना ख़ूब जानते थे, जैसा कि उन्होंने वर्षो पहले फर्माया भी था—

शामत आ गई आख़िर कह गया ख़ुदा लगती।
रास्तीका फल पाता बन्दये-मुकर्रब क्या?

[बारगाहे ख़ुदावन्दीका सबसे वडा फरिश्ता खरी बात कहने पर जन्नतसे निकाल दिया गया। उसने यही कहा था कि जिस सरको मैंने तेरी हुज़ूर मे झुकाया है, उसे आदमे-ख़ाकीके सामने क्योकर झुका दूं? कितना उच्च और श्रेष्ठ उपासनाका भाव था, परन्तु ख़ुदा साहब इस उच्च भावनाकी कद्र न कर सके, और तानाशाहीपर उतर आये कि तूने आज्ञा भग करके अनुशासन-हीनताका परिचय दिया है और उसे जन्नतसे निकाल दिया। जव फरिश्ते भी सत्य वोलनेपर दण्ड पा सकते हैं तो सर्वसाधारणकी तो वात ही क्या?]

फिर भी न जाने क्यो चूक गये और ईर्ष्यालुओको व्यर्थमे ही आक्रमण करनेका अवसर दे दिया।

मिर्ज़ा 'यगाना' वृद्धावस्थाके कारण हैदराबादसे आकर अब लखनऊ रहने लगे हैं।

जून १९५३]

ख़ुदीका नशा चढ़ा आपमें रहा न गया।
ख़ुदा बने थे 'यगाना' मगर बना न गया॥
गुनाहे-ज़िन्दादिली कहिये या दिल-आज़ारी[1]।
किसीपै हँस लिये इतना कि फिर हँसा न गया॥
समझते क्या थे, मगर सुनते थे तरानये-दर्द।
समझमें आने लगा जब तो फिर सुना न गया॥
पुकारता रहा किस-किसको डूबनेवाला।
ख़ुदा थे इतने, मगर कोई आड़े आ न गया॥

पहले अपनी तो ज़ात पहचाने।
राज़े-क़ुदरत बखाननेवाला॥
जानकर और होगया अनजान।
हो तो ऐसा हो जाननेवाला॥
पेटके हलके लाख बड़मारे।
कोई खुलता है जाननेवाला?
ख़ाकमें मिलके पाक हो जाता।
छानता क्या है छाननेवाला॥
दिनको दिन समझे और न रातको रात।
वक़्तकी क़द्र जाननेवाला॥

क्या ख़बर थी दिल-सा शाहंशाह आख़िर एक दिन।
इश्कके हाथों गदाओं-का-गदा[2] हो जायगा॥

---

[1]सताना, [2]भिक्षुक।

किस दिले-बेकरारको तूने यह् वलवला दिया।
देना न देना एक है, जर्फसे[1] जब सिवा दिया॥
हुस्न चमक गया तो क्या, बूएवफा तो उड गई।
इस नई रोशनीने आह् दिलका कँवल बुझा दिया॥

जिन्दा रक्खा है सिसकनेके लिए
वाह् अच्छे दोस्तसे पाला पड़ा॥

किधर चला है? इधर एक रात बसता जा।
गरजनेवाले गरजता है क्या, बरसता जा॥
रुला-रुलाके गरीबोको हँस चुका कलतक।
मेरी तरफसे अब अपनी दसापै हँसता जा॥

शरबतका घूँट जानके पीता हूँ ख़ूनेदिल।
गम खाते-खाते मुँहका मज़ातक बिगड गया॥

इसी फरेबने मारा कि कल है कितनी दूर।
इस आज्-कलमें अबस[2] दिन गँवाये है क्या-क्या?
खुशीमें अपने कदम चूम लूँ तो जेबा[3] है।
वोह् लग़जिशोपै[4] मेरी मुसकराये है क्या-क्या॥

बस एक नुक्तये-फर्ज़ीका[5] नाम है काबा।
किसीको मरकज़े-तहकीकका[6] पता न चला॥
उमीदो-बीमने[7] मारा मुझे दुराहेपर।
कहांके दैरोहरम? घरका रास्ता न मिला॥

---

[1]आवश्यकतासे अधिक, पात्रतासे सिवा; [2]व्यर्थ, [3]मुनासिब; [4]लडखडानेपर; [5]कल्पना-बिन्दुका; [6]खोजके लक्षका; [7]आशा-निराशाने।

मुझे दिलकी खतापर 'यास' ! शरमाना नही आता।
पराया जुर्म अपने नाम लिखवाना नहीं आता।।
बुरा हो पाये-सरकशका कि थकजाना नही आता।।
कभी गुमराह होकर राहपर आना नही आता।।
मुसीबतका पहाड़ आखिर किसी दिन कट ही जायेगा।।
मुझे सरमारकर तेशेसे मर जाना नही आता।।
दिले-बेहौसला है इक जरा-सी ठेसका महमाँ।
वह आँसू क्या पियेगा जिसको गम खाना नहीं आता।।
सरापा राज़ हूँ मै क्या बताऊँ कौन हूँ, क्या हूँ ?
समझता हूँ मगर दुनियाको समझाना नही आता।।

गिला किसे है कि कातिलने नीमजाँ[1] छोड़ा।
तड़प-तड़पके निकालूँगा हौसला दिलका।।
ख़ुदा बचाये कि नाज़ुक है उनमें एक-से-एक।
तुनक-मिज़ाजोंसे ठहरा मुआमला दिलका।।
किसीके हो रहो अच्छी नही यह आज़ादी।
किसीकी ज़ुल्फसे लाज़िम है सिल्सिला दिलका।।
पियाला ख़ाली उठाकर लगा लिया मुँहसे।
कि 'यास' कुछ तो निकल जाय हौसला दिलका।।

परवाने कर चुके थे सर-अंजामे-ख़ुदकशी[2]।
फ़ानूस आड़े आ गया, तकदीर देखना।।

चराग़ेज़ीस्त[3] बुझा दिलसे इक धुआँ निकला।
लगाके आग मेरे घरसे मेहमाँ निकला।।

---

[1]अर्द्धमृतक; [2]आत्महत्याका प्रयत्न; [3]जीवन-दीप।

तड़पके आबलापा[1] उठ खड़े हुए आख़िर।
तलाशेयारमे जब कोई कारवाँ निकला॥
लहू लगाके शहीदोमें हो गये दाख़िल।
हविस तो निकली मगर हौसला कहाँ निकला?
लगा है दिलको अब अजामेकारका खटका।
बहारे-गुलसे भी इक पहलुए-ख़िज़ाँ निकला॥

ज़माना फिर गया चलने लगी हवा उलटी।
चमनको आग लगाके जो बाग़बाँ निकला॥
कलामे 'यास'से दुनियामें फिर इक आग लगी।
यह कौन हज़रते 'आतिश'का हमज़बाँ निकला?

हवाएतुन्दमें[2] ठहरा न आशियाँ अपना।
चराग़ जल न सका ज़ेरे-आस्माँ अपना॥
जरसने[3] मुज़दए-मंज़िल[4] सुनाके चौंकाया।
निकल चला था दबे पाँव कारवाँ अपना॥
ख़ुदा किसीको भी यह ख्वाबे-बद न दिखलाये।
कफ़सके सामने जलता है आशियाँ अपना॥

सुहबते-वाइज़में भी अँगड़ाइयाँ आने लगीं।
राज़ अपनी मैकशीका क्या कहे क्योंकर खुला।

रोशन तमाम काबा-ओ-बुतख़ाना हो गया।
घर-घर जमालेयारका अफ़साना हो गया॥

दयारे-बेख़ुदी है अपने हक़में गोशये-राहत।
ग़नीमत है घड़ीभर ख्वाबे-ग़फ़लतमें बसर होना॥

---

[1]पाँवके छाले; [2]तेज हवामे, [3]यात्रीदलके ऊँटोकी घण्टीकी आवाज़ने, [4]यात्राका अन्त होनेकी खुशख़बरी।

दिले-आगाहने बेकार मेरी राह खोटी की।
बहुत अच्छा था अंजामे-सफ़रसे बेख़बर होना ॥

लाश कम्बख़्तकी काबेमें कोई फिकवा दे।
कूचये-यारमें क्यों ढेर हो बेगानेका ॥

ज़ीस्तके हैं यही मज़े वल्लाह।
चार दिन शाद, चार दिन नाशाद ॥
सब्र इतना न कर कि दुश्मनपर।
तल्ख़ हो जाय लज़्ज़ते-बेदाद ॥

आप क्या जानें मुझपै क्या गुज़री।
सुबहदम देखकर गुलोंका निखार ॥
दूरसे देख लो हसीनोंको।
न बनाना कभी गलेका हार ॥
अपने ही सायेसे भड़कते हो।
ऐसी वहशतपै क्यों न आये प्यार ॥
तू भी जी और मुझे भी जीने दे।
जैसे आबाद गुलसे पहलू-ए-ख़ार ॥
बेनियाज़ी भली कि बेअदबी।
लड़खड़ाती ज़बाँसे शिकवये-यार ॥
बन्दगीका सबूत दूँ क्योंकर।
इससे बहतर है कीजिये इन्कार ॥
ऐसे दो दिल भी कम मिले होंगे।
न कशाकश हुई न जीत न हार ॥

ढूँढ़ते फिरते हो अब टूटे हिए दिलमें पनाह।
दर्दसे ख़ाली दिले-गबरू-मुसलमाँ देखकर ॥

यगाना चगेज़ी

सब्र करना सख्त मुश्किल है तड़पना सहल है।
अपने बसका काम कर लेता हूँ आसाँ देखकर ॥

ऐसी पिला कि साक़िया! फ़िक्र न हो निजातकी।
नशा कहीं उतर न जाय रोजे-शुमार देखकर ॥
आबला-पा निकल गये काँटोको रौंदते हुए।
सूझा फिर आँखसे न कुछ मंज़िले-यार देखकर ॥

सब तेरे सिवा काफ़िर, आख़िर इसका मतलब क्या?
सिर फिरा दे इन्साँका ऐसा ख़ब्ते-मज़हब क्या?

ज़मी करवट बदलती है बलाये-नागहाँ होकर।
अजब क्या सरपै आये पाँवकी ख़ाक आस्माँ होकर ॥
उठो ऐ सोनेवालो! सरपै धूप आई क़यामतकी।
कहीं यह दिन न ढल जाये नसीबे-दुश्मनाँ होकर ॥
अरे ओ जलनेवाले! काश जलना ही तुझे आता।
यह जलना कोई जलना है कि रह जाये धुआँ होकर ॥

पसीना तक नहीं आता, तो ऐसी ख़ुश्क तौबा क्या?
नदामत वोह कि दुश्मनको तरस आ जाये दुश्मनपर ॥

उस तरफ़ सात आसमाँ और इस तरफ़ इक नातवाँ।
तुमने करवट तक न ली दुनियाको बरहम देखकर ॥

ख़ुदा जाने अजलको पहले किसपर रहम आयेगा?
गिरफ़्तारे क़फ़सपर या गिरफ़्तारे नशेमनपर ॥

मजाल थी कोई देखे तुम्हे नज़र भरकर।
यह क्या है आज पड़े हो मले-दले क्योंकर ॥

कोई क्या जाने बाँकपनके यह ढंग।
सुलह दुश्मनसे और दोस्तसे जंग॥
क्या ज़माना था कैसे दुश्मन थे?
रातभर सुलह और दिनभर जंग॥
सगे-दिलको बना दूँ देवता मैं।
आप क्या जानें बन्दगीके ढंग?

फिरते हैं भेसमें हसीनोंके।
कैसे-कैसे डकैत थांग-की-थांग॥

आह! यह बन्दये ग़रीब आपसे लौ लगाये क्यों?
आ न सके जो वक़्तपर, वक़्तपै याद आये क्यों?*

दीदकी[1] इल्तजा[2] करूँ? तिश्ना[3] ही क्यों न जान दूँ।
परदयेनाज़[4] ख़ुद उठे, दस्ते-दुआ उठायें क्यों?

बदल न जाये ज़मानेके साथ नीयत भी।
सुना तो होगा जवानीका एतबार नहीं॥
जो ग़म भी खायें तो पहले खिलायें दुश्मनको।
अकेले खायेंगे ऐसे तो हम गँवार नहीं॥

नतीजा कुछ भी हो लेकिन हम अपना काम करते हैं।
सवेरे ही से दूरन्देश फ़िक्रे-शाम करते हैं॥

---

*इसी मज़मूनपर असर लखनवीका यह अमर शेर भी सुनें—

हम उसीको ख़ुदा समझते हैं।
जो मुसीबतमें याद आ जाये॥

[1]दर्शनोंकी; [2]प्रार्थना; [3]प्यासा; [4]प्रेयसीका परदा।

दावरे-हश्र[1] होशयार, दोनोमें इम्तयाज[2] रख।
बन्दये-नाउम्मीद[3] और बन्दये-बेनियाजमें[4] ॥
यादे-खुदाका वक्त भी आयेगा कोई या नही ?
यादे-गुनाह कब तलक शामोसहर नमाजमें ?

नाखुदा ! कुछ जोरे-तूफाँ आजमाई भी दिखा।
फिक्रे-साहिल छोड लगर डाल दे मजधारमें ॥
'यास' ! गुमराहीसे अच्छी जहमते-वामान्दगी।
डाल लो जजीर कोई पायेकज-रफ्तारमें ॥

पैवन्दे-खाक होनेका अल्लाहरे इश्तयाक।
उतरे हम अपने पाँवसे अपने मजारमें ॥
शरमिन्दये-कफन न हुए आसमाँसे हम।
मारे पडे है सायए-दीवारे-यारमें ॥
कहते हो अपने फेलका मुख्तार है बशर।
अपनी तो मौत तक न हुई अख्तियारमें ॥
दुनियासे 'यास' जानेको जी चाहता नहीं।
वल्लाह क्या कशिश है इस उजड़े दयारमें ॥

मौत माँगी थी खुदाई तो नही माँगी थी।
ले दुआ कर चुके अब तर्के-दुआ करते है ॥
गलेमें बाहे डाले चैनसे सोना जवानीमें।
कहाँ मुमकिन फिर ऐसा ख्वाब देखूँ जिन्दगानीमें ॥
गनीमत जान उस कूचेमें थककर बैठ जानेको।
किसे दमभर मिला आराम दौरे-आसमानीमें ॥

---

[1]प्रलयके दिन न्याय करनेवाले, [2]भेद-अन्तर, [3]असफल भक्तमे; [4]अभिलाषा न रखनेवाले भक्तमे।

यकसाँ कभी किसीकी न गुज़री ज़मानेमें।
यादश बख़ैर बैठे थे कल आशियानेमे॥
सदमा दिया तो सब्रकी दौलत भी देगा वोह।
किस चीज़की कमी है सख़ीके ख़ज़ानेमें॥
अफ़सुर्दा ख़ातिरोंकी ख़िज़ाँ क्या, बहार क्या?
कुंजे-कफ़समे मर रहे या आशियानेमें॥
हम ऐसे बदनसीब कि अबतक न मर गये।
आँखोके आगे आग लगी आशियानेमें॥
दीवाने बनके उनके गलेसे लिपट भी जाओ।
काम अपना कर लो 'यास' बहाने-बहानेमें॥

हिजाबेनाज़ बेजा 'यास' जिस दिन बीचमें आया।
उसी दिनसे लड़ाई ठन गई शेख़ो-बिरहमनमें॥

तौबा भी भूल गये इश्क़में वोह मार पड़ी।
ऐसे ओसान गये है कि ख़ुदा याद नहीं॥
क्या अजब है कि दिले-दोस्त हो मदफ़न अपना।
कुश्तये-नाज़ हूँ मै कुश्तये-बेदाद नहीं॥

ख़ूनके घूँट बलानोश पिये जाते है।
ख़ैर साक़ीकी मनाते है जिये जाते है॥
एक तो दर्द मिला उसपै यह शाहाना मिज़ाज।
हम ग़रीबोको भी क्या तोहफ़े दिये जाते है॥
दिल है पहलूमें कि उम्मीदकी चिनगारी है।
अबतक इतनी है हरारत कि जिये जाते है॥

तो क्या हमी है गुनहगार, हुस्नेयार नहीं?
लगावटोंका गुनाहोंमें क्या शुमार नहीं?

खटका लगा न हो तो मजा क्या गुनाहका।
लज्जत ही और होती है चोरीके मालमें॥
अल्लाह कफसमें आते ही क्या मत पलट गई।
आखिर हमी तो है कि फडकते थे जालमें॥

महराबोंमें सजदा वाजिब, हुस्नके आगे सजदा हराम।
ऐसे गुनहगारोपै खुदाकी मार नहीं तो कुछ भी नहीं॥
दिलसे खुदाका नाम लिये जा, काम किये जा दुनियाका।
काफिर हो, दींदार हो, दुनियादार नही तो कुछ भी नही॥

सजदा वह क्या कि सरको झुकाकर उठा लिया।
बन्दा वोह है जो बन्दा हो, बन्दानुमा न हो॥
उम्मीदे-सुलह क्या हो, किसी हकपरस्तसे।
पीछे वोह क्या हटेगा, जो हदसे बढा न हो॥

मजा जब है कि रफ़्ता-रफ़्ता उम्मीदे फलें-फूलें।
मगर नाज़िल कोई फज़्ले-इलाही नागहाँ क्यों हो॥
समझमें कुछ नही आता पढ़े जाऊँ तो क्या हासिल ?
नमाजोंका है कुछ मतलब तो परदेसी ज़बाँ क्यो हो ?

दिल अपना जलाता हूँ, काबा तो नही ढाता।
और आग लगाते हो, क्यो तुहमते-बेजासे॥

बाज़ आ साहिलपै गोते खानेवाले बाज़ आ।
डूब मरनेका मजा दरियाए-बेसाहिलमें है॥

मुफलिसीमें मिज़ाज शाहाना।
किस मरज़की दवा करे कोई॥

हँस भी लेता हूँ ऊपरी दिलसे।
जी न बहले तो क्या करे कोई ॥

न जाने क्या हो यह दीवाना जिस जगह बैठे।
ख़ुदीके नशेमे कुछ अनकही न कह बैठे ॥

कोई ज़िद थी या समझका फेर था।
मन गये वोह मैंने जब उल्टी कही ॥
शक है काफ़िरको मेरे ईमानमें।
जैसे मैंने कोई मुँह देखी कही ॥
क्या खबर थी यह ख़ुदाई और है।
हाय ! क्यों मैंने ख़ुदा लगती कही ॥

ताअ़त हो या गुनाह पसेपरदा ख़ूब है।
दोनोका मज़ा जब है कि तनहा करे कोई ॥

बन्दे न होंगे, जितने खुदा है खुदाईमें।
किस-किस ख़ुदाके सामने सजदा करे कोई ?

इतना तो जिन्दगीका कोई हक़ अदा करे।
दीवानावार हालपै अपने हँसा करे ॥

ज़माना ख़ुदाको ख़ुदा जानता है।
यही जानता है तो क्या जानता है ॥
वोह क्यों सर खपाये तेरी जुस्तजूमें ?
जो अंजामे-फ़िक्रेरसा जानता है ॥
ख़ुदा ऐसे बन्दोंसे क्यो फिर न जाये।
जो बैठा हुआ माँगना जानता है ॥
वोह क्यों फूल तोड़े वोह क्यों फूल सूँघे ?
जो दिलका दुखाना बुरा जानता है ॥

यगाना चंगेजी

क्यों होशमें फिर आया, क्यो हाथ मल रहा है
हदसे गुजरनेवाले तेरी यही सजा है
मंजिलकी फिक्र क्यों हो, जब तू हो और मैं हूँ
पीछे न फिरके देखूँ काबा भी हो तो क्या है

हासिले-फिक्रे नारसा क्या है।
तू खुदा बन गया बुरा क्या है।।
कैसे-कैसे खुदा बना डाले।
खेल बन्देका है खुदा क्या है।।
दर्दे-दिलकी कोई दवा न हुआ।
या इलाही! यह माजरा क्या है।।
नूर ही नूर है कहाँका जहूर।
उठ गया परदा अब रहा क्या है।।
रहने दे हुस्नका ढका परदा।
वक्त-बेवक्त झाँकता क्या है।।

यहीसे सैर कर लो 'यास' इतनी दूर क्यो जाओ।
अदम आबादका डांडा मिला है कूए-कातिलसे।।

गला न काट सके अपना वाये नाकामी।
पहाड़ काटते है रोजोशब मुसीबतके।।

मौत आई आने दीजिये परवा न कीजिये।
मंजिल है खत्म सजदये-शुकराना कीजिये।।
दीवानावार दौड़के कोई लिपट न जाय।
आँखोमें आँख डालके देखा न कीजिये।।

क्या कोई पूछनेवाला भी अब अपना न रहा।
दर्दे-दिल रोने लगे 'यास' जो बेगानोंसे।।

पढ़के दो कलमे अगर कोई मुसलमाँ हो जाय।
फिर तो हैवान भी दो रोजमें इन्साँ हो जाय ॥
आगमें हो जिसे जलना तो वोह हिन्दु बन जाय।
ख़ाकमें हो जिसे मिलना वोह मुसलमाँ हो जाय ॥
नशये-हुस्नको इस तरह उतरते देखा।
ऐबपर अपने कोई जैसे पशेमाँ हो जाय ॥

मज़ा गुनाहका जब था कि बावज़ू करते।
बुतोंको सजदा भी करते तो क़िब्लारू करते ॥

जो रो सकते तो आँसू पूछनेवाले भी मिल जाते।
शरीके-रंजोगम दामनसे पहले आस्तीं होती ॥

जैसे दोज़ख़की हवा खाके अभी आया है।
किस क़दर वाइज़े मक्कार डराता है मुझे ॥
जलवये-दारोरसन अपने नसीबोंमें कहाँ ?
कौन दुनियाकी निगाहोंपै चढ़ाता है मुझे ॥

सुलहजूईने गुनहगार मुझे ठहराया।
जुर्म साबित जो किया चाहो तो मुश्किल हो जाय ॥
नाख़ुदाको नहीं अबतक तहे-दरियाकी ख़बर।
डूबकर देखे तो बेगानये-साहिल हो जाय ॥

एक ही सजदा किया दूसरेका होश कुजा।
ऐसे सजदेका यह अंजाम कि बातिल हो जाय ॥

न इन्तक़ामकी आदत न दिल दुखानेकी।
बदी भी कर नहीं आती मुझे कुजा नेकी ?

अल्लाहरी बेताबियेदिल वस्लकी शबको।
कुछ नींद भी आँखोंमें है कुछ मयका असर भी ॥

वोह् कश-म-कशे-गम है कि मै कह् नही सकता।
आग़ाजका अफ़सोस और अजामका डर भी॥

कोई बन्दा इश्कका है कोई बन्दा अक़्लका।
पॉव अपने ही न थे काबिल किसी जजीरके॥

शैतानका शैतान, फरिश्तेका फ़रिश्ता।
इन्सानको यह् बुलअ़जबी याद रहेगी॥

दर्देसर था सजदये शामोसहर मेरे लिए।
दर्देदिल ठहरा दवाए दर्देसर मेरे लिए॥
दर्देदिलके वास्ते पैदा किया इन्सानको।
जिन्दगी फिर क्यो हुई है, दर्देसर मेरे लिए॥
फितरते-मजबूरको अपने गुनाहोपै है शक।
वा रहेगा कबतलक तौबाका दर मेरे लिए॥

हँसीमें लग़जिशे-मस्ताना उड़ गई वल्लाह्।
तो वेगुनाहोसे अच्छे गुनाहगार रहे॥
जमाना इसके सिवा और क्या वफा करता।
चमन उजड़ गया कॉटे गलेका हार रहे॥

ऐसी आजाद रूह् इस तनमे।
क्यो पराये मकानमें आई॥
बात अधूरी मगर असर दूना।
अच्छी लुकनत जबानमें आई॥
ऑख नीची हुई अरे यह् क्या।
क्यो गरज दरमियानमें आई॥
मै पयम्बर नही 'यगाना' सही।
इससे क्या कस्र शानमें आई॥

कीमया-ए-दिल क्या है, खाक है, मगर कैसी ?
लीजिये तो मँहगी है, बेचिये तो सस्ती है ॥
खिज्रे-मंजिल अपना हूँ, अपनी राह चलता हूँ ।
मेरे हालपर दुनिया क्या समझकर हँसती है ॥

बन्दा वोह बन्दा जो दम न मारे ।
प्यासा खड़ा हो दरिया किनारे ॥

शबे-उम्मीद कट गई, लेकिन—
जिन्दगी अपनी मुख्तसिर न हुई ॥

सलामत रहे दिलमें घर करनेवाले ।
इस उजड़े मकाँमें बसर करनेवाले ॥
गलेपै छुरी क्यों नही फेर देते ।
असीरोंको बेबालो-पर करनेवाले ॥
खड़े है दुराहेपै दैरो-हरमके ।
तेरी जुस्तजूमें सफर करनेवाले ॥
कुजा सहने-आलम, कुजा कुंजे-मरकद ।
बसर कर रहे हैं बसर करनेवाले ॥

१० दिसम्बर १९५०]

यगाना साहबके कलामका चयन उनके निम्न ग्रन्थोंसे किया गया है—
१—गंजीना—प्रकाशक, कौमी दारुल इशाअत लाहौर,
प्रकाशन-सन और आवृत्तिका उल्लेख नही ।
१८६ पृष्ठोमे १२१ गजले और १६३ रुबाइयाँ हैं;
२—आयाते वजदानी—प्रकाशक—मिर्जा मुरादवेग चुगताई हैदराबाद दक्षिण—१९४५ ई०मे प्रकाशित पृ० ४००, विस्तृत टीका और भाष्य सहित ।

'अमजद' हैदराबादी

[१८८४ — ..... ई०]

हजरत अमजद १८८४ ई०मे हैदराबादमे पैदा हुए। आपके जन्मके ४० रोज़ बाद पिताका निधन हो गया। माताके अतिरिक्त कोई ऐसा कुटुम्बी या रिश्तेदार न था, जो भरण-पोषणका भार उठाता। आमदनीका कोई ज़रिया नही था। जिन्दगी निहायत तकलीफसे बसर होती थी। फिर भी विधवा और असहाय माँ ने हिम्मत न हारी और महनत-मजदूरी करके अमजदका भरण-पोषण ही नही किया, अपितु उन्हे उन दिनोके रिवाजके अनुसार फारसीकी उच्च शिक्षा भी दिलाई। अमजद बहुत परिश्रमी और अध्ययनशील थे। जिन उस्तादसे आपने फारसीका अध्ययन किया, वे आपके मकानसे १४ मील दूर रहते थे। फिर भी आप उनके पास दैनिक पढने जाते थे। इस परिश्रमका परिणाम यह हुआ कि आपने फारसीमे मुशी फाजिलकी सर्वोच्च डिगरी प्राप्त की।

हैदराबाद उन दिनो शेरो-शायरीका मुख्य केन्द्र बना हुआ था। मिर्ज़ा 'दाग'-जैसे ख्यातिप्राप्त उस्ताद हैदराबादमे जलवा-फर्मा थे। दो हज़ारके लगभग उनके शिष्य भारतके कोने-कोनेमे बिखरे हुए थे। 'दाग' की गज़लसराईसे जब समस्त भारत गमक रहा था, तब हैदराबादकी

साहित्यिक मजलिसोके तो ठाट ही निराले होगे, जहाँ वे स्वयं अपनी जबाने-मुबारकसे ग़जल पढते थे। स्थानीय लोगोके अतिरिक्त बीसो शिष्य दिल्ली, इलाहाबाद, एटा, पजाब आदि-जैसे सुदूर शहरोमे उस्तादकी खिदमतमे रहते थे। महाराजा सर किशनप्रसाद 'शाद' जो कि हैदराबाद राज्यके प्रधान मत्री थे, अधिक-से-अधिक शायरोका समागम बनाये रखते थे। उन जैसा महमाँ-नवाज़, क़द्रदाँ, कला-पारखी और उदार-हृदय प्रधान शासक जहाँ मोजूद हो और स्वयं नवाव हैदराबाद मिर्जा 'दाग'के शिष्य हो, और शेरोशायरीमे दिलचस्पी लेते हो, उस हैदराबादका क्या कहना? गली-गली, कूचे-कूचेमे मुशायरोकी महफिले जमती थी। 'दाग'के अतिरिक्त उत्तरी भारतसे 'सरशार', 'तुर्की', 'गिरामी', 'जहीर' वगैरह भी रौनक अफरोज़ थे। इसी वातावरणमे अमजद भी परवान चढ रहे थे। चुनाचे शायरीका शौक बचपनसे ही हो गया। कहीसे 'नासिख़'का दीवान हाथ लग गया, अतः चुपचाप उसे पढते रहते और शेर कहनेका अभ्यास करते रहते थे। पहले-पहल आपने यह शेर मौज़ूँ किया—

नही गम गरचे दुश्मन हो गया है, आसमाँ अपना।
मगर या रब! न हो, नामहरबाँ वोह महरबाँ अपना॥

जीविकोपार्जनके लिए आप स्कूलमे शिक्षक हो गये, और उसी अल्प वेतनमे स्वाभिमानके साथ सन्तोषपूर्वक जीवन-निर्वाह कर रहे थे, कि दैवसे आपका यह सुख भी नही देखा गया। आपकी माँ, पत्नी और पुत्री दरियामे डूब गये। किसी तरह कई फर्लांग मौजोके थपेड़े खाकर अकेले 'अमजद' साहब बचे। इस दुर्घटनासे आपको बहुत सदमा पहुँचा।

आप स्वाभिमानी, महमाँनवाज़, विनम्र और सरल एवं सादा स्वभावके बुजुर्ग है। आप गज़ल और नज्म दोनो ही कहते है।

नालए-जाने-ख़स्ता-जाँ,[1] अर्शेबरींपै[2] जाये क्यो ?
मेरे लिए जमीनपर साहबे-अर्श[3] आये क्यो ?
नूरे-जमी-ओ-आसमाँ, दीदये-दिलमें आये क्यों ?
मेरे सियाह-ख़ानेमें कोई दिया जलाये क्यो ?
ज़ख्मको घाव क्यो बनाओ ? दर्दको और क्यों बढाओ ?
निसबतेहूको[4] तोड़कर कीजिये हाय-हाय क्यो ?
बख्शने वाला जब मेरा उफ़्वै[5] है तुला हुआ ?
मुझ-सा गुनहगार फिर जुर्मसे बाज़ आये क्यो ?
'अमजदे'-ख़स्ता हालकी पूरी हो क्योंकर आरज़ू।
दिल ही नही जब उसके पास,म तलबेदिल बर आये क्यो ?

अमजद सूफी खयालके हैं। आपका इश्क ईश्वरीय और भाव दार्शनिव हैं। उसी दृष्टिसे निम्न अशआर अवलोकन कीजिये---

हम तो एक बार उसके हो जायें।
वोह हमारा हुआ, हुआ, न हुआ ॥
ढूँढता हूँ मैं हर नफ़स[6] उसको।
एक नफस[7] मुझसे जो जुदा न हुआ ॥
क्या मिला वहदते-वजूदीसे[8] ?
बन्दा, बन्दा रहा, ख़ुदा न हुआ ॥
बन्दगीमें यह किब्रयाई[9] है ?
ख़ैर गुजरी कि मैं ख़ुदा न हुआ ॥

---

[1]निर्बल शरीरवाले दिलकी आहे; [2]ईश्वरके समीप तक; [3]भगवान्; [4]ईश्वर-लीनताको, [5]क्षमाशीलतापै, [6]हर स्वासमे, [7]एक लमहेको; [8]एक ईश्वरवादसे; [9]अभिमान ।

किस तरह नज़र आये वोह परदानशी 'अमजद' !
हर परदेके बाद और एक परदा नज़र आता है ।।*

वोह करते हैं सब छुपकर, तद्बीर इसे कहते हैं ।
हम घर लिये जाते हैं, तकदीर इसे कहते हैं ।।†

चन्द रुबाइयात—

हर ज़र्रेपै फ़ज़्ले-किब्रिया[1] होता है ।
इक चश्मे-ज़दनमें[2] क्या-से-क्या होता है ।।
असनाम दबी ज़बाँसे यह कहते हैं—
"वोह चाहे तो पत्थर भी ख़ुदा होता है ।।"

हर गामपै चकराके गिरा जाता हूँ ।
नक़्शे-कफ़े-पा बनके मिटा जाता हूँ ।।
तू भी तो सम्भाल मेरे देनेवाले !
मैं बारे-अमानतमें दबा जाता हूँ ।।

इस जिस्मकी केंचुलीमे इक नाग भी है ।
आवाज़-शिकस्ता दिलमे इक राग भी है ।।
बेकार नही बना है, इक तिनका भी ।
ख़ामोश दियासलाईमें इक आग भी है ।।

---

*आह परदा तो कोई मानए-दीदार नहीं ।
अपनी ग़फलतके सिवा कुछ दरो-दीवार नही ।।

—दर्द

†हम ख़्वाबमें वाँ पहुँचे, तद्बीर इसे कहते हैं ।
वोह नींदसे चौंक उट्ठे, तकदीर इसे कहते हैं ।।

[1]ईश्वरीय कृपा, [2]पलक मारते ।

हर चीजका खोना भी बड़ी दौलत है।
बेफिकरीसे सोना भी बडी दौलत है॥
इफलासने[1] सख्त मौत[2] आसाँ कर दी।
दौलतका न होना भी बडी दौलत है॥

साँचेमे अजलके हर घडी ढलती है।
हर वक्त यह शमए-ज़िन्दगी जलती है॥
आती-जाती है साँस अन्दर-बाहर।
या उम्रके हलकपर छुरी चलती है॥

हासिल न किया महरसे[3] ज़र्रा तुमने।
दरियासे पिया न एक कतरा तुमने॥
'अमजद' साहब ! खुदाको क्या समझोगे ?
अबतक खुद ही को जब न समझा तुमने॥

—आजकल १५ जुलाई १९४६ ई०

कामयाबीके नहीं हम जिम्मेदार।
कामकी हदतक हमारा काम है॥
जब्र उस मुख्तारपर क्योकर करें ?
अर्ज़ कर देना हमारा काम है॥

हुस्ने-सूरतको नही कहते है हुस्न।
हुस्न तो हुस्ने-अमलका नाम है॥
रह सके किस तरह 'अजमद' मुतमईन !
ज़िन्दगी खौफ़े-खुदाका नाम है॥

२७ मई १९५३ ई०]

—आजकल जून १९४६ ई०

---

[1]निर्धनताने, [2]कठिनतासे आनेवाली मृत्यु, दुखदमृत्यु; [3]सूर्यसे।

तू कानका कच्चा है तो बहरा हो जा,
बदबीं[1] है अगर आँख तो अन्धा हो जा।
ग़ाली-ग़ैबत[2] दरोग़गोई[3] कबतक?
'अमजद' क्यों बोलता है, गूँगा हो जा॥

मत सुन परदेकी बात बहरा हो जा,
मत कह इसरारे-ग़नी[4] गूँगा हो जा।
वोह रूए लतीफ़[5] और यह नापाक नज़र[6],
'अमजद' क्यों देखता है अन्धा हो जा॥

दुनियाके हरइक ज़र्रेसे घबराता हूँ।
ग़म सामने आता है, जिधर जाता हूँ।
रहते हुए इस जहाँमें मिल्लत गुज़री,
फिर भी अपनेको अजनबी पाता हूँ॥

दिलशाद[7] अगर नहीं तो नाशाद सही,
लबपर नग़मा[8] नहीं तो फ़रियाद सही।
हमसे दामन छुड़ाके जानेवाले,
जा-जा गर तू नहीं तेरी याद सही॥

गुलज़ार[9] भी सहरा[10] नज़र आता है मुझे,
अपना भी पराया नज़र आता है मुझे।
दरिया-ए-वजूदमें है तूफ़ाने-अदम[11],
हर क़तरे में ख़तरा नज़र आता है मुझे॥

---

[1]कुदृष्टि, [2]पीठ पीछे बुराई करनेकी आदत; [3]असत्य सम्भाषण; [4]शत्रुका भेद; [5]सुशीला पवित्र नारीकी कोमल देह; [6]कामुक दृष्टि; [7]प्रसन्न; [8]संगीत [9]उद्यान; [10]वीरान जंगल; [11]अस्तित्व रूपी दरियामें मृत्यु रूपी तूफ़ान।

बरबाद न कर बेकसका चमन, बेदर्द खिज़ाँसे कौन कहे।
ताराज[1] न कर मेरा ख़िरमन,[2] उस बर्क़े-तपाँसे[3] कौन कहे॥
मुझ ख़स्ता जिगरकी जान न ले, यह कौन अजलको[4] समझाये।
कुछ देर ठहर जा ऐ दरिया! दरिया-ए-रवाँसे[5] कौन कहे॥
सीनेमें बहुत ग़म है पिन्हा[6] और दिलमें हज़ारों हैं अरमाँ।
इस कहरे-मुजस्सिमके[7] आगे, हाल अपना ज़बाँसे कौन कहे॥
हरचन्द हमारी हालतपर रहम आता है हरइकको लेकिन--
कौन आपको आफ़तमें डाले, उस आफ़ते-जाँसे कौन कहे॥
क़ासिदके बयाँका ऐ 'अमजद' क्योंकर हो असर उनके दिलपर
जिस दर्दसे तुम ख़ुद कहते हो, उस तर्ज़ेबयाँसे कौन कहे॥

किस शानसे 'मैं' कहता हूँ, अल्लाहरे मैं।
समझा नहीं 'मैं' को आजतक वाहरे मैं॥

आजकल-फ़रवरी १९५४ ई०

फकीर

---

[1]नष्ट; [2]खलिहान; [3]कौन्दती हुई बिजलीसे, [4]मृत्युको, [5]बहते हुए दरियासे; [6]छिपे हुए, [7]साक्षात मौतसे।

'आसी' ग़ाज़ीपुरी

[...... — १९१७ ई०]

हज़रत शाह अब्दुलअलीम 'आसी' अपने सूफियाना कलाम और रुबाइयोके कारण प्रसिद्ध थे। आप नासिख़ स्कूलके स्नातक और लखनवी शायर थे। अत आपके यहाँ ख़ारजी और लखनवी रगके अशआरकी भी काफी सख्या है। जिनके नमूने न देकर हम केवल चन्द चुने हुए शेर दे रहे है—

गौना करते ही पिया कमाने-खाने परदेश चला गया और वहां मिरच-देशवालोके[1] फन्देमे फँस गया। बेचारे परस्पर मुँह भी न देख सके। वहाँसे किसी तरह बचकर आया भी तो कब? जब केस रूपा हो गये। और ऑखे इस योग्य न रही कि एक दूसरेको निहार सके। विरह-व्यथा सहते-सहते वे विरहके मूर्तमान रूप हो गये है। उन्हे तब वस्ल नसीब

---

[1]दक्षिण अफ्रीका आदि प्रदेशो बसानेके लिए अग्रेज़ भारतसे कुली भर्ती किया करते थे। जो निश्चित अवधिके बाद ही भारत वापिस आ सकते थे। उनमे अधिकाश कष्टोके कारण मर जाते थे, या वही रह जाते थे, विरले ही लौटकर आ पाते थे। इन्ही प्रदेशोको उन दिनो मिरच-देश कहा जाता था।

होता है, जब वे वस्लके योग्य नही रहे। वे दोनो रजोगमके इतने अभ्यस्त हो गये है कि उन्हे यह जीवन भरकी कठोर तपस्याके बाद मिली हुई मिलनकी शुभवेला भी आकुल किये दे रही है। इसी जीवनके अनुभवको 'आसी' देखिये किस खूबीसे एक शेरमे समोते है—

वस्ल है, पर दिलमे अबतक जौके-ग़म पेचीदा है।
बुल-बुला है ऐन दरियामें मगर नम-दीदा है॥

[वस्ल नसीब है, मगर दिल गमोके शौकका इतना आदी हो गया है कि वह वस्लका लुत्फ उठानेके योग्य नही रहा है। पानीका बुलबुला पानीमे रहते हुए भी अश्रुपूर्ण (नमदीदा) है, क्योकि वह अपने क्षणिक जीवनसे परिचित है]

अक्सर सूफी शायर हर जगह खुदाका जलवा देखते है—

मदरसा या दैर था या काबा या बुतख़ाना था।
हम सभी मेहमान थे, इक तू ही साहबख़ाना था॥
—ख्वाजा दर्द

यहाँतक कि वे माशूकके पैकरमे भी ख़ुदाको ही देखते है।

मगर 'आसी'के इश्ककी इन्तहा ओर बुलन्दी देखिये कि वह खुदाको खुदा ही नही समझते। वे हश्रमे पहुंचे तो उनका ख़याल था कि वहाँ खुदाका जलवा देखनेको मिलेगा ओर वह हमारा इन्साफ करेगा। मगर हश्रमे यह क्या हश्र-बरपा हुआ कि जिसे लोग खुदा समझ रहे है, वह तो 'आसी'का वही शोख माशूक है। उसने 'आसी'को देखते ही हयासे मुँह फेर लिया—

हश्रमें मुंह फेरकर कहना किसीका हाय! हाय!!
"आसी-ए-गुस्ताखका हर जुर्म ना-बख़्शीदा है॥"

वहाँ भी वादये-दीदार इस तरह टाला।
"कि ख़ास लोग तलब होंगे बारे आमके बाद॥"

मूर्ति-पूजक तो मुसलमानोसे अधिक तेरे भक्त है। मुसलमान तो केवल काबेमे ही तुझे सजदा करते है और यह तो सब जगह तेरा चिन्तन और स्मरण करते हैं---

इतने बुतख़ानोमे सजदे एक काबेकी एवज़।
कुफ़्र तो इस्लामसे बढकर तेरा गरवीदा है॥

वर्षोकी साधनाके बाद, प्यारेका दीदार नसीब हुआ, मगर दिलको यकीन नही आता कि प्यारा यूँ भी जलवागर हो सकता है---

मेरी आँखें और दीदार आपका?
या कयामत आ गई या ख्वाब है॥

इश्कके बारेमे 'आसी' फर्माते हैं---

आशिकीमें है महवियत दरकार।
राहते-वस्ल-ओ-रजे-फुरकत क्या?

इसी गजलके चन्द अशआर और---

न गिरे उस निगाहसे कोई।
और उफ़्ताद क्या, मुसीबत क्या?
जिनमें चर्चा न कुछ तुम्हारा हो।
ऐसे अहबाब, ऐसी सुहबत क्या?
जाते हो जाओ, हम भी रुख़सत है।
हिज्रमें जिन्दगीकी मुद्दत क्या?

'आसी' खुदासे दुआ माँगते हैं—

ताबे-दीदार जो लाये मुझे वोह दिल देना।
मुँह कयामतमें दिखा सकनेके काबिल देना॥
रश्के-खुरशीदे-जहाँ-ताब दिया दिल मुझको।
कोई दिलबर भी इसी दिलके मुकाबिल देना॥

अस्ल फित्ना है, कयामतमे बहारे-फरदौस।
जुज़ तेरे कुछ भी न चाहे मुझे वोह दिल देना॥
तेरे दीवानेका बेहाल ही रहना अच्छा।
हाल देना हो अगर रहमके काबिल देना॥
हाय-रे-हाय तेरी उक्दाकुशाईके मजे।
तू ही खोले जिसे वोह उक्दये-मुश्किल देना॥

चन्द शेर और—

तुम नहीं कोई तो सबमे नज़र आते क्यो हो ?
सब तुम ही तुम हो तो फिर मुँहको छुपाते क्यों हो ?

फ़िराके-यारकी ताकत नही, विसाल मुहाल।
कि उसके होते हुए हम हो, यह कहाँ यारा ?

तलब तमाम हो मतलूबकी अगर हद हो।
लगा हुआ है यहाँ कूच हर मुकामके बाद॥

अनलहक और मुश्ते-ख़ाके-मन्सूर।
ज़रूर अपनी हकीकत उसने जानी॥

इतना तो जानते है कि आशिक फ़ना हुआ।
और उससे आगे बढ़के ख़ुदा जाने क्या हुआ॥

यूँ मिलूँ तुमसे मैं कि मै भी न हूँ।
दूसरा जब हुआ तो ख़िलवत क्या ?

इश्क कहता है कि आलमसे जुदा हो जाओ।
हुस्न कहता है जिधर जाओ नया आलम है ?

न कभीके बादापरस्त हम, न हमें यह कैफे-शराब है।
लबेयार चूमें है ख्वाबमे, वही जोशे-मस्तिये-ख्वाब है॥
दिले मुब्तिला है तिरा ही घर, उसे रहने दे कि खराबकर।
कोई मेरी तरह तुझे मगर न कहे, कि ख़ाना खराब है॥
उन्हे किब्रे-हुस्नको' नख़वतें, मुझे फ़ज्रे-इश्ककी हैरतें।
न कलाम है, न पयाम है, न सवाल है, न जवाब है॥
दिले-अन्दलीब यह शक नही, गुलो-लालाके यह वरक नहीं।
मेरे इश्कका वोह रिसाला है, तेरे 'हुस्नकी यह किताब है॥

नहीं होता कि बढ़कर हाथ रख दें।
तड़पता देखते है, दिल हमारा॥
अगर काबू न था दिलपर, बुरा था।
वहाँ जाना सरे-महफ़िल हमारा॥

वहाँ पहुँचके यह कहना सबा ! सलामके बाद।
"कि तेरे नामकी रट है, ख़ुदाके नामके बाद॥"

यह हालत है तो शायद रहम आ जाय।
कोई उसको दिखा दे दिल हमारा॥

'रूप मदका गरूर।

बे तेरे, जीनेकी किस जीसे तमन्ना करते ?
मर न जाते जो शबे-हिज्र तो हम क्या करते ?

भला किस दिलसे हम इनकारे-दर्दे-इश्क करते हैं।
नहीं कुछ है तो क्यो रह-रहके दिलपर हाथ धरते हैं॥

जाहिरमें तो कुछ चोट नही खाई है ऐसी।
क्यो हाथ उठाया नही जाता है जिगरसे ?

ता-सहर वोह भी न छोडी तूने ऐ बादे-सबा !
यादगारे-रौनके-महफिल थी परवानेकी खाक॥

तूने दावाए-खुदाई न किया खूब किया।
ऐ सनम ! हम तेरे दीदारको तरसा करते॥
दिले-बीमारसे दावा है मसीहाईका।
चश्मे-बीमारको अपने नहीं अच्छा करते॥
दागेदिल दिलवर नहीं, सीनेसे फिर लिपटा हूँ क्यो ?
मैं दिलेदुश्मन नही, फिर यूँ जला जाता हूँ क्यो ?

रात इतना कहके फिर आशिक तेरा गश कर गया।
"जब वही आते नहीं, मैं होशमें आता हूँ क्यो ?"

वोह कहते है—"मैं जिन्दगानी हूँ तेरी"।
यह सच है तो इसका भरोसा नही है॥*

---

*तुम हमारी जिन्दगी, पर जिन्दगीकी क्या उम्मीद ?
तुम हमारी जान, लेकिन क्या भरोसा जानका ?

—ज़ौक

कभी न जोशे-जुनूँमें, न पाँवमें ताक़त ।
कोई नहीं जो उठा लाये घरमें सहराको ॥

ऐ पीरेमुगाँ ! ख़ूनकी बू साग़रे-मै में ।
तोड़ा जिसे साक़ीने, वोह पैमानये-दिल था ॥
—निगार जनवरी १९५० ई०

कुछ हमी समझेंगे या रोज़े-क़यामतवाले ।
जिस तरह कटती है उम्मीदे-मुलाक़ातकी रात ॥

गुबार होके भी 'आसी' फिरोगे आवारा ।
जुनूँने-इश्क़से मुमकिन नहीं है छुटकारा ॥

हम-से बेकल-से वादये-फ़रदा ?
बात करते हो तुम क़यामतकी ॥

साथ छोड़ा सफ़रे-मुल्केअदममें सबने ।
लिपटी जाती है मगर हसरते-दीदार हनूज़ ॥

हवाके रुख़ तो ज़रा आके बैठ जा ऐ क़ैस !
नसीबे-सुबहने छेड़ा है ज़ुल्फ़े-लैलाको ॥

बस तुम्हारी तरफ़से जो कुछ हो ।
मेरी सई और मेरी हिम्मत क्या ॥

जो रही और कोई दम यही हालत दिलकी ।
आज है पहलु-ए-ग़मनाकसे रुख़सत दिलकी ॥
घर छुटा, शहर छुटा, कूचये-दिलदार छुटा ।
कोहो-सहरामें लिये फिरती है वहशत दिलकी ॥

रास्ता छोड़ दिया उसने इधरका 'आसी'।
क्यो बनी रहगुज़रे-यारमें तुरबत दिलकी ॥

तरक़्क़ी और तनज़्ज़ुलकी न पूछो।
मैं दुश्मन हो गया, दुश्मन हुआ दोस्त ॥

इश्कने फरहादके परदेमें पाया इन्तकाम।
एक मुद्दतसे हमारा खून दामनगीर था ॥
वोह मुसव्वर था कोई या आपका हुस्नेशबाब।
जिसने सूरत देख ली, इक पैकरे-तसवीर था ॥

मेरे दुश्मनको न मुझपर कभी काबू देना।
तुमने मुँह फेर लिया, आह, यही क्या कम है ?

कोई तो पीके निकलेगा, उड़ेगी कुछ तो बू मुँहसे।
दरे-पीरेमुग़ाँपर मैपरस्तो चलके विस्तर हो ॥
किसीके दरपै 'आसी' रात रो-रोके यह कहता था—
कि "आखिर मैं तुम्हारा बन्दा हूँ, तुम बन्दा परवर हो ॥"

टुकडे होकर जो मिली, कोहकनो-मजनूँको।
कहीं मेरी ही वोह फूटी हुई तकदीर न हो ॥

यह दोनो एक ही तरकशके है तीर।
मुहब्बत और मर्गे-नागहानी ॥

तुम्ही सच-सच बता दो कौन था शीरींकी सूरतमें।
कि मुश्तेखाककी हसरतमें कोई कोहकन क्यो हो ॥

कौन उस घाटसे उतरा कि जनाये 'आसी'।
जोसा लेनेको बढे है लवे-साहिलकी तरफ ॥

मिलनेकी यही राह, न मिलनेकी यही राह।
दुनिया जिसे कहते हैं, अजब राहगुज़र है॥

ऐ शबेगोर ! वोह् बेताबि-ए-शबहाय फ़िराक़।
आज आरामसे सोना मेरी तक़दीरमें था॥
—तनकीदी हाशिये

६ जून १९५३ ई०]

असगरहुसैन साहब 'असगर'के पूर्वज गोरखपुर ज़िला निवासी थे। आपके पिता गोण्डेमे कानूनगो थे। उन्होने वहीसे पेशन ली और फिर स्थाई रूपसे वही बस गये थे।

असगर १ मार्च १८८४ ई०में पैदा हुए। घरेलू वातवरण और आर्थिक स्थिति अनुकूल न होनेके कारण स्कूली शिक्षा व्यवस्थित रूपसे न हो सकी। यूँ फारसी-अरबीका अच्छा ज्ञान था। अंग्रेज़ी भी समझ-बोल लेते थे। लेकिन यह सब उनके निजी अध्यवसाय और परिश्रमका परिणाम था।

'असगर' शायर न होते तो भी उनकी ख्यातिमे अन्तर न पड़ता। आप सदाचारी और पवित्र थे। आपका व्यक्तित्व उच्च और प्रभावशाली था। आपके सत्सगके परिणामस्वरूप 'जिगर' जैसे मशहूर रिन्द मैख़ानेका रास्ता छोडकर सम्यक् मार्गपर चल निकले।

आप चश्मेका रोज़गार करते थे, आमदनी अल्प होते हुए भी न कभी आपने तंगदस्तीका किसीसे ज़िक्र किया, न कभी मेहमाँनवाज़ीमे अन्तर पड़ने दिया। अच्छा पहनते थे, अच्छा खाते थे। जो वजअ़ शुरूमे अख़्तियार की, उसे जीवनभर निभाया।

कुछ अर्से आप लाहौरके 'उर्दू मरकज़'मे कार्य करते रहे, और अन्तिम दिनोमें आप 'हिन्दुस्तानी' एकेडमी' इलाहाबादकी त्रैमासिक पत्रिका 'हिन्दुस्तानी'का सम्पादन करते थे। 'असग़र' खुद फ़र्माया करते थे कि "मेरी ज़िन्दगीमें कोई वाक़या क़ाबिलेज़िक्र नहीं है।" १९३६ ई०में आपका निधन हो गया।

शायरीमें पहले तो आप मुंशी खलील अहमद 'वज्द'से संशोधन लेते रहे। फिर चन्द गजलें मुंशी अमीर अल्लाह 'तसलीम'को दिखाईं। लेकिन यह क्रम अधिक नहीं चल सका। 'असग़र' बाक़ायदा किसीके शिष्य नही हुए। आपने जो मौलिक प्रतिभा और बुद्धि पाई थी, उसको देखते हुए यह कहना पड़ता है कि उन दिनों आपके योग्य कोई उस्ताद भी नही था। वही दकियानूसी पुरातन सड़े-गले विचारोंकी शृंखला चली आ रही थी। उस शृंखलामे 'असग़र' जैसा प्रतिभाशाली जकड़कर नहीं रखा जा सकता था। उसे जिस लक्षपर पहुँचना था, उसके लिए कोई पगडंडी नहीं बनी थी। उसे स्वयं नई डगर बनानी थी।

लीक-लीक गाड़ी चले, लीकहि चलें कपूत।
लीक छोड़ तीनों चलें, शायर, सिंह, सपूत॥

'असग़र' उर्दूके उन्ही शायरों, नरसिंहों और सपूतोमें-से एक थे, जो अपना मार्ग स्वयं बनाते हैं। बक़ौल जिगर मुरादाबादी—

अपना ज़माना आप बनाते हैं अहले-दिल।
हम वोह नहीं कि जिसको ज़माना बना गया॥

'असग़र'ने भी 'अमीर' और 'दाग़'की शायरीके वातावरणमे आँखें खोलीं। लेकिन आपने उस रंगको सर्वथा हेय समझकर अपना नवीन

[1]आपका परिचय शेरोसुखन प्रथम भागमें दिया जा चुका है।

मार्ग चुना, और तारीफ यह कि जिस गज़लसे लोग दामन बचाकर निकलने लगे थे, उसीको अपने पवित्र भाव व्यक्त करनेका साधन चुना, और उस पतनोन्मुखी गज़लमे इतनी पवित्रता भरी कि उसका कायाकल्प ही हो गया। गज़ल आज जिस ऊँचाईपर पहुँच गई है, उसके इस विकासकी कल्पना स्वप्नमें भी नही हो सकती थी।

'असगर'का प्रेम ईश्वरीय प्रेम है। आपके किसी शेरमें आध्यात्मिकता-की सुबास है तो किसी शेरमे दार्शनिकताकी झलक। कही सूफियाना रग हिलोरे ले रहा है, तो कही पवित्र प्रेम छलका पड रहा है। आपके यहाँ अश्लील, निकृष्ट विचार तो दरकिनार, एक शेर भी साधारण और हलका नही मिलता। प्रत्येक शेर आत्म-विभोर कर देनेकी शक्ति रखता है। जो भी कहा गया है, बहुत गहरेमे डूबकर कहा गया है।

'असगर'का प्रेम निर्मल स्वच्छ और निष्कलक है। उनके प्रेममे विषयाशक्ति नही कि उसे छिपाये फिरे, वे तो मुक्त-हृदयसे अपने प्रेमको प्रकट करते है और दृढतापूर्वक कहते है—प्रेम ही मेरे जीवनकी चेष्टा (सई) है। यही मेरे जीवनकी कमाई (हासिल) है। यही मेरी यात्राका अभीष्ट स्थान है और यही वहाँ तक पहुँचनेके लिए पगडडी (जाद-ए-मजिल) है—

इश्क ही सअ़ई मेरी, इश्क ही हासिल मेरा।
यही मजिल है, यही जाद-ए-मंजिल मेरा॥

'असगर'का यह प्रेम अपने प्यारेकी खोजमे उन्हे मन्दिरो-मस्जिदोकी खाक नही छनवाता। अपितु उनके झमेलोसे उन्हे बेदाग निकाल ले जाता है—

दैर[1]-ओ-हरम[2] भी कूचए-जानाँमे आये थे।
पर शुक्र है कि बढ़ गये दामन बचाके हम॥

---

[1]मन्दिर, [2]मस्जिद।

परिणाम इसका यह होता है कि वे इस प्रेमाग्निमे तपकर इतने महान हो उठते है कि अपने प्यारेकी यादमे जहाँ भी मत्था टेक देते है, एक तीर्थ बन जाता है। और यह तीर्थ है भी क्या ? जहाँ कही सिद्ध पुरुषो और वीतरागात्माओके चरण पहुँचे हैं, वही उनकी स्मृतिमे तीर्थ बन गये।

नियाजे-इश्क़को[1] समझा है क्या ऐ वाइजे-नादाँ !
हजारों बन गये काबे, जहाँ मैंने जबीं रख दी ॥

प्रेमी जब उक्त स्थितिमे पहुँच जाता है, तब उसके लिए मिलन-सुख और विरह-दुःख कुछ अर्थ नही रखते––

क्या दर्दे-हिज्र और यह क्या लज्जते-विसाल।
उससे भी कुछ बुलन्द मिली है नजर मुझे ॥

और अन्तमे एक ऐसी स्थिति आती है कि प्रेमी और प्यारा दोनो एकाकार हो जाते हैं––

अब न यह मेरी जात है, अब न यह कायनात[2] है।
मैंने नवाये-इश्कको[3] साजसे यूँ मिला दिया ॥

असगरने कुछ इसी तरहके भाव भिन्न-भिन्न अशआरमे इस तरह व्यक्त किये हैं––

इक सूरते-उफ़्तादगीये-नक़्शे-फना[4] हूँ।
अब राहसे[5] मतलब न मुझे राहनुमासे[6] ॥

मेरे मजाकेशौकका इसमे भरा है रग।
मैं खुदको देखता हूँ, कि तसवीरे-यारको ॥

---

[1]प्रेम-विभोरताको; [2]सासारिक वस्तुएँ, [3]प्रेम-वाणी, प्रेम-सगीतको; [4]विनाशका मिटा हुआ चिह्न; [5]मार्गमे, [6]पथ-प्रदर्शकसे।

हुजूमे-शौकमें अब क्या कहूँ मैं क्या न कहूँ ?
मुझे तो खुद भी नहीं, अपना मुद्दआ मालूम ॥

जहान है कि नही जिस्मोजान है कि नहीं।
वोह देखता है मुझे, उसको देखता हूँ मैं ॥

बेखुदीका[1] आलम है, महवे-जिबहसाई[2] हूँ।
अब न सरसे मतलब है, और न आस्तानेसे[3] ॥

अब न कही निगाह है, अब न कोई निगाहमें।
महव[4] खडा हुआ हूँ मैं, हुस्नकी जलवागाहमें ॥

जुनूने-इश्कमें हस्तीए-आलमपै नज़र कैसी ?
रुख़ेलैलाको क्या देखेंगे महमिल देखनेवाले ॥

अब मुझे खुद भी नही होता है कोई इम्तियाज़[5]।
मिट गया हूँ इस तरह उस नक़्शे-पा-के सामने ॥

नज़रमें वोह गुल समा गया है, तमाम हस्तीपै छा गया है।
चमनमें हूँ या कफसमें हूँ मैं मुझे अब इसकी ख़बर नहीं है ॥

अक्स किस चीज़का आईन-ए-हैरतमें नहीं।
तेरी सूरतमें है क्या जो मेरी सूरतमें नही ॥

ख़ुदा जाने कहाँ है 'असगरे' दीवाना बरसोंसे।
कि उसको ढूँड़ते है काब-ओ-बुतख़ाना बरसोंसे ॥

'असग़रने अपने प्यारेके मोहनी रूपका वर्णन इतनी कुशलता और पवित्रतासे किया है कि कही भी वासनाकी गन्ध नही आती—

---

[1]आत्मलीनताका, [2]नतमस्तक-लीन; [3]प्यारेके दर्वाज़ेके पत्थरसे, [4]तल्लीन, [5]विवेक।

उसका वोह क़दैरअना,[1] उसपर वोह रुख़े-रंगीं[2] ।
नाज़ुक-सा सरेशाख़[3] इक गोया गुलेतर[4] देखा ॥

तुम सामने क्या आये, इकतरफा बहार आई ।
आँखोने मेरी गोया फरदौसे-नजर[5] देखा ॥

उठ्ठे अजब अन्दाज़से वोह जोशेगज़बमें ।
चढता हुआ इक हुस्नका दरिया नज़र आया ॥

दोशपर बिजली गिरी, आँखें भी ख़ैरा[6] हो गई ।
तुम तो क्या थे, इक झलक-सी थी तुम्हारी यादकी ॥

जो शजर बागमें है, वोह शजरे-तूर[7] है आज ।
पत्ते-पत्तेमें जो देखा तो वही नूर[8] है आज ॥

यूँ मुसकराये जान-सी कलियोमें पड़ गई ।
यूँ लबकुशा हुए कि गुलिस्ताँ बना दिया ॥

ताकत कहाँ मुशाहदये-बेहिजाबकी[9] ।
मुझको तो फूँक देगी, तजल्ली[10] नकाबकी ॥

नक़्शे-कदम यह है, उसी जाने-बहारके ।
इक पखडी पड़ी है लहदपर गुलाबकी ॥

मैं इज़्तराबे-शौक[11] कहूँ या जमाले-दोस्त[12] ।
इक बर्क़[13] है जो कौंद रही है नकाबमें ॥

---

[1]उपयुक्त कद; [2]सुन्दर मुख, [3]टहनीपर, [4]ताज़ा फूल; [5]स्वर्गका दृश्य। [6]चकाचौंध, [7]तूर पर्वतका वृक्ष, [8]रूप प्रकाश ; [9]परदेसे बाहर देखनेकी; [10]आभा; [11]उत्कण्ठाकी बेचैनी; [12]प्यारेका रूप; [13]बिजली ।

वोह निकहतसे[1] सिवा पिन्हाँ[2], वोह गुलसे भी सिवा उरियाँ[3]।
यह हम हैं जो कभी परदा, कभी जलवा समझते हैं॥

और सच तो यह है कि उसके रूपका बखान हो भी नही सकता—

अगर खमोश रहूँ मैं तो तू ही सब कुछ है।
जो कुछ कहा तो तेरा हुस्न हो गया महदूद॥

'असगर'के दीवानमे एक शेर भी ऐसा नही, जिसमे कामुकताकी गन्ध आये। उनके यहाँ पवित्र प्रेम हिलोरे ले रहा है। वे तो प्यास बुझानेको भी कामुकता (बुलहविसी) समझते हैं। अपने प्यारेकी खोजमें मृगमरीचिका (मौज-सराब)मे भटकते रहना ही जीवनका सार समझते हैं। दर्शनोकी प्यास बुझी तो फिर प्रेमपिपासा कहाँ रही?

मैं बुलहविस[4] नही कि बुझाऊँगा तिश्नगी[5]।
मेरे लिए तो उठती हैं मौजें सराबकी[6]॥

अब तो यह तमन्ना है किसीको भी न देखूँ।
सूरत जो दिखा दी है तो ले जाओ नजर भी॥

आये थे सभी तरहके जलवे मेरे आगे।
मैंने मगर ऐ दीदये-हैराँ नही देखा॥

हम एक बार जलवये-जानाना देखते।
फिर काबा देखते न सनमखाना देखते॥

तसलीम[7] मुझको खानये-काबाकी मंजिलत[8]।
सब कुछ सही मगर वोह तेरा आस्ताँ[9] नहीं॥

---

[1]फूलकी सुगन्धसे, [2]छुपा हुआ, [3]नग्न, प्रकट, [4]कामुक; [5]प्यास, [6]मृगमरीचिकाकी, [7]स्वीकृत, [8]इज्जत, गौरव, [9]निवासस्थान।

हर ज़र्रेमे सहराके बेताब नजर आई।
लैलीको भी मजनूंने यूँ ख़ाक बसर देखा॥

प्रेममे तो आठों पहर भीगा रहे, तभी जीवनकी सार्थकता है—

कहर है थोड़ी-सी भी ग़फ़लत तरीक़े-इश्कमे।
आँख झपकी क़ैसकी और सामने महमिल न था॥

'असगर'की रिन्दी मुलाहिज़ा हो—

रहा जो होश तो रिन्दी-ओ-मैकशी क्या है।
ज़रा ख़बर जो हुई फिर वोह आगही[1] क्या है॥

उर्दू शायरीकी परम्पराके अनुसार 'असगर'के यहाँ भी शेख़-ओ-ज़ाहिदका ज़िक्र मिलता है। मगर देखिये कितने सलीके और सौजन्यताके साथ—

न होगा काविशे-बेमुद्दआका[2] राज़दाँ[3] बरसों।
वोह ज़ाहिद जो रहा सरगुश्तए सूदो-ज़ियाँ[4] बरसों॥

सनमकदेमे तजल्लीकी ताब मुश्किल है।
हरममें शेख़को महवे-नमाज़ रहने दे॥

मन्दिरो-मस्जिदोको लेकर ससारमे इतना अधिक नर-सहार हुआ। फिर भी धर्मान्धोकी आँखे नही खुलती। ईश्वर और ख़ुदाके नामपर

---

[1]होशयारी, वाक़िफ़ियत; [2]नि:स्वार्थ लगन, स्वार्थहीन कार्य्योंका; [3]भेदी; [4]हानि-लाभके झगडेमे भटकनेवाला। भाव यह है कि ज़ाहिद तो हूर-जन्नतकी अभिलाषामे नमाज़-रोज़ेका पाबन्द रहा, वह कैसे जानेगा कि नि:स्वार्थ पूजा-उपासना क्या होती है?

उनके बन्दोका हर समय रक्त पीनेको प्रस्तुत रहते हैं। इसके विपरीत 'असगर'का पवित्र हृदय है कि—

मौजे-नसीमे-सुबहमें[1], बूए-सनम कदा[2] भी है।
और भी जान पड गई कैफियते-नमाजमें[3]॥

'असगर' शायर है, मौलवी या वाइज़ नही। वे भी भूले-भटकोको मार्ग सुझाते हैं। मगर वाइजकी तरह नही कि पथिक खिन्न हो उठे—

फित्ना-सामानियोकी[4] खू[5] न करे।
मुख्तसर यह कि आरज़ू न करे॥
पहले हस्तीकी है तलाश जरूर।
फिर जो गुम हो तो जुस्तजू न करे॥
मावराये-सुखन[6] भी है कुछ बात।
बात यह है कि गुफ्तगू न करे॥

तर्के-मुद्दआ[7] कर दे ऐने-मुद्दआ[8] हो जा।
शाने-अबद[9] पैदाकर मजहरे-खुदा[10] हो जा॥
उसकी राहमे मिटकर, बे-नियाजे-खलकत बन।
हुस्नपर फिदा होकर हुस्नकी अदा हो जा॥
तू है जब पयाम उसका फिर पयाम क्या तेरा।
तू है जब सदा उसकी, आप बेसदा हो जा॥

---

[1]प्रात कालीन मृदु पवनमे, [2]मन्दिरोकी सुगन्ध भरी होनेसे; [3]नमाज पढनेमे और भी आनन्द आने लगा, [4]सासारिक वस्तुओकी; [5]इच्छा; [6]वाणीका सयम, चुप रहना, [7]अभिलाषाओका त्याग, [8]इच्छा रहित, निर्मल, [9]आत्मसमर्पण करके उसके सेवक बननेका गौरव प्राप्त कर, [10]ईश्वरके प्रकट होनेका स्थान।

आदमी नही सुनता आदमीकी बातोंको।
पैकरे-अमल बनकर ग़ैबकी सदा हो जा॥

यह मुझसे सुन ले तू राज़े-पिन्हाँ[1] सलामती खुद है दुश्मने-जाँ[2]।
कहाँसे रहरवमे[3] जिन्दगी हो कि राह जब पुरखतर नही है[4]॥

तलब कैसी[5]? कहाँका सूदो-हासिल कैफ़े-मस्तीमें[6]।
दुआतक भूल जाते, मुद्दआ[7] इतना हसी होता॥

चला जाता हूँ हँसता खेलता मौजे-हवादससे[8]।
अगर आसानियाँ हों, जिन्दगी दुश्वार हो जाये॥

'असगर' भी युवकोको कुछ कर गुज़रनेकी प्रेरणा देते है, परन्तु कितने कोमल और मधुर ढगसे कि नसीहतका आभासतक नही मिलता। वे 'हाली'की तरह वाइज़ बनकर यह नही कहते—

कुछ कर लो नौजवानो उठती जवानियाँ है।

बल्कि रिन्दाना एक लतीफ इशारा भर करके रह जाते हैं।

ख़ूब जी भरके उठा ले जोशे-वहशतके[9] मज़े।
फिर कहाँ यह दश्त[10], यह नाका[11] कहाँ, महमिल[12] कहाँ?

---

[1]छुपा हुआ भेद; [2]सुख-चैन ही आत्माके शत्रु है, [3]यात्रीमे जीवनका ओज कहाँसे आये, [4]जब मार्ग ही भयानक एव कण्टकाकीर्ण नही है। भाव यह है कि संघर्षमे ही ज़िन्दगी है, [5]अभिलाषाओका ज़िक्र क्या; [6]आत्म-लीनतामे हानि-लाभका लेखा-जोखा क्यो; [7]सुरुचिपूर्ण उपासनाका ध्येय पवित्र हो तो दुआके लिए हाथ उठानेकी भी याद न रहे; [8]आपदाओसे, [9]दीवानगीके; [10]वियावान; [11]ऊँटनी; [12]लैलाका महमिल।

'असगर' इश्कमे रोना-बिसूरना तो खिलाफेशान समझते ही हैं। बल्कि आपका विश्वास है कि सुखके साथ यदि दु:ख न रहे तो जिन्दगी बेमज़ा हो जाय—

सहबाए-खुशगवार[1] भी या रब ! कभी-कभी।
इतना तो हो कि तल्खियेग़म[2] बेमजा न हो॥

हमारे सामने 'असगर' साहबके निम्न दो ग्रन्थ है—
१—निशाते-रूह—इसमे कुल ६३ गजले है।
२—सरोदे जिन्दगी—इसमे कुल ४८ गजले है।
इन्ही दोनो ग्रथोसे असग़रके सरल शेर चुनकर दिये जा रहे हैं—

सारे आलममें किया तुझको तलाश।
तू ही बतला है रगेगरदन[3] कहाँ ?
खूब था सहरा, पर ऐ जौके-जुनूँ।
फाड़नेको नित नये दामन कहाँ ?

वोह लज्ज़ते-सितमका जो ख़ूगर[4] समझ गये।
अब जुल्म मुझपै है कि सितम गाह-गाहका[5]॥
शीशेमें मौजे-मै को यह क्या देखते है आप।
इसमें जवाब है उसी बर्के-निगाहका॥

मेरी वहशतपै बहस-आराइयाँ अच्छी नही नासह !
बहुत-से बाँध रक्खे है गरेबाँ मैंने दामनमें॥
इलाही कौन समझे मेरी आशुफ्ता मिजाजीको[6]।
कफसमें चैन आता है, न राहत है नशेमनमें॥

---

[1]सुख-चैन-सुरा; [2]दुखकी कडवाहटे [3]कुरानमे ऐसी आयत है कि खुदा हर रगे-गर्दनके नज़दीक है, [4]अभ्यस्त, [5]कभी-कभी; [6]अस्थिर स्वभावको।

खिलते ही फूल बागमें पजमुर्दा[1] हो चले।
जुम्बिश रगे-बहारमें मौजे-फ़ना की है॥

बुलबुलो-गुलमें जो गुजरी हमको उससे क्या गरज।
हम तो गुलशनमें फकत, रंगेचमन देखा किये॥

जानते हैं वोह अदायें इस दिले-बेताबकी।
उनसे बढ़कर कौन होगा, नुक्तादाने-इज़्तराब[2]॥

नासहे मुश्फिक[3] ! मगर यूँ ही तड़पने दे मुझे।
मुझको भी मालूम है, सूदो-जियाने-इज़्तराब[4]॥

तुम बाख़बर हो, चाहनेवालोके हालसे।
सबकी नजरका राज तुम्हारी नजरमें है॥
मुझको जलाके गुलशने-हस्ती न फूँक दे।
वोह आग जो दबी हुई मुश्ते-परमें है॥

'असगर' हरीमेइश्कमे,[5] हस्ती[6] ही जुर्म है।
रखना कभी न पाँव, यहाँ सर लिए हुए॥

मरते-मरते न कभी आकिलो-फ़रज़ाना बने।
होश रखता हो जो इन्सान तो दीवाना बने॥
परतवे-रुख़के करिश्मे थे सरे राह गुजर।
जर्रे जो ख़ाकसे उठ्ठे, वोह सनमख़ाना बने॥
कारफ़रमा है फकत हुस्नका नैरंगे-कमाल।
चाहे वोह शमअ़ बने, चाहे वोह परवाना बने॥

---

[1]कुम्हलाने लगे, [2]बेचैनीको समझनेवाला; [3]हितैषी उपदेशक महाराज; [4]बेचैनीका हानि-लाभ; [5]प्रेममन्दिरमें, [6]अहमन्यता, अपने व्यक्तित्वका भान।

ऐसा कि बुतकदेका जिसे राज हो सुपुर्द ।
अहले-हरममें कोई न आया नजर मुझे ॥

गो नहीं रहता कभी परदेमें राजे-आशिकी ।
तुमने छुपकर और भी उसको नुमायाँ कर दिया ॥

सरगर्मे तजल्ली हो, ऐ जलवए-जानाना !
उड जाये धुआँ बनकर, काबा हो कि बुतख़ाना ।

अबतक नहीं देखा है, क्या उस रुखेख़न्दाँको ।
इकतारे शुआईसे उलझा है जो परवाना ॥
माना कि बहुत कुछ है, यह गर्मिये-हुस्नेशमअ् ।
इससे भी जियादा है, सोजे-गमे-परवाना ॥
जाहिदको तआज्जुब है, सूफीको तहय्युर है ।
सद-रश्के-तरीकत है, इक लगजिशे-मस्ताना ॥

राजकी जुस्तजूमे मरता हूँ ।
और मैं खुद हूँ एक परदये-राज ॥

वोह शोख़ियोसे जलवा दिखाकर तो चल दिये ।
उनकी ख़बरको जाऊँ कि अपनी ख़बरको मैं ॥

होता है राजे-इश्को-मुहब्बत उन्हींसे फाश !
आँखें जबाँ नहीं है, मगर बेजबाँ नहीं ॥

पीरीमें अक्ल आई तो समझे कि ख़ूब थी ।
डूबी हुई निशातमें,[1] ग़फलत शबाबकी[2] ॥

---

[1]सुखचैनमे, [2]यौवनकी ।

न पूछो मुझपै क्या गुजरी है मेरी मश्क़े-हसरतसे।
क़फ़सके सामने रक्खा रहा है, आशियाँ बरसों॥

यह इश्क़ने देखा है, यह अक़्लसे पिन्हाँ है।
क़तरेमें समन्दर है, ज़र्रेमें बयाबाँ है॥
धोका है यह नज़रोंका, बाज़ीचा है लज्ज़तका।
जो कुंजे-क़फ़समे था, वोह अस्ल गुलिस्ताँ है॥
—निशातेरूह

समा गये मेरी नज़रोमें छा गये दिलपर।
ख़याल करता हूँ, उनको कि देखता हूँ मैं॥
न कोई नाम है मेरा न कोई सूरत है।
कुछ इस तरह हमातनदीद हो गया हूँ मैं॥
न कामयाब हुआ और न रह गया महरूम।
बड़ा गजब है कि मंजिलपै खो गया हूँ मैं॥

खैर गई नज़रके साथ, होशका भी पता नही।
और भी दूर हो गये, आके तेरे हुज़ूरमें॥
तेरी हज़ार बरतरी, तेरी हज़ार मसलहत।
मेरी हरइक शिकस्तमें मेरे हरइक कुसूरमें॥

बस इतनेपर हुआ हंगामये-दारोरसन बरपा।
कि ले आग़ोशमें आईना क्यो महरे-दरख़्शाँको॥
सुना है हश्रमें शानेकरम बेताब निकलेगी।
लगा रक्खा है सीनेसे मताये-ज़ौक़े-इसयाँको॥

कहके कुछ लाला-ओ-गुल रख लिया परदा मैंने।
मुझसे देखा न गया, हुस्नका रुसवा होना॥

हश्र है जाहिद ! यहाँ हर चीजका है फैसला ।
ला कोई हुस्नेअमल, मेरी खताके सामने ।।

चमनमें छेड़ती है किस मजेसे गुंच-ओ-गुलको ।
मगर मौजे-सबाकी पाकदामानी नही जाती ।।

कभी है महवेदीद ऐसे समझ बाकी नही रहती ।
कभी दीदारसे महरूम हैं इतना समझते हैं ।।
यही थोड़ी-सी मै है और यही छोटा-सा पैमाना ।
इसीसे रिन्द राजे-गुम्बदे-मीना समझते हैं ।।
कभी तो जुस्तजू जलवेको भी परदा बताती है ।
कभी हम शौकमें परदेको भी जलवा समझते हैं ।।
यह जौकेदीदकी शोखी, वोह अक्सेरगे-महबूबी ।
न जलवा है न परदा, हम उसे तनहा समझते हैं ।।

सनमखानेमें क्या देखा कि जाकर खो गया 'असगर' !
हरममें काश रह जाता तो जालिम शेखे-दी होता ।।

तुम उस काफिरका जौके-बन्दगी, अब पूछते क्या हो ?
जिसे ताके-हरम भी अबरु-ए-खमदार हो जाये ।।

हुस्नको वुसअतें जो दी, इश्कको हौसला दिया ।
जो न मिले, न मिट सके, वोह मुझे मुद्दआ दिया ।।

मह-ओ-अंजुममें भी अन्दाज है पैमानोंके ।
शबको दर बन्द नहीं होते है मैखानोंके ।।

बुझ गई कल जो सरेबज़्म वही शमअ़ न थी।
शमअ़ तो आज भी सीनेमें है परवानोंके॥

जिसपै बुतख़ाना तसद्दुक, जिसपै काबा भी निसार।
एक सूरत ऐसी भी सुनते हैं, बुतख़ानेमें है॥

—सरुदे ज़िन्दगी

१८ जून १९५३]

बुतख़ाना-ओ-काबा

अलीसिकन्दर 'जिगर' १८९० ई०मे मुरादाबादमे उत्पन्न हुए। आपके पूर्वज मौलवी मुहम्मद समीअ़ दिल्ली-निवासी थे और शाहजहाँ बादशाहके शिक्षक थे। किसी कारणसे बादशाहके कोप-भाजन बन गये। अत आप दिल्ली छोडकर मुरादाबाद जा बसे थे। 'जिगर'के दादा हाफिज़ मुहम्मदनूर 'नूर' और पिता मौलवी अलीनजर 'नजर' भी शायर थे।

'जिगर' पहले मिर्जा 'दाग'के शिष्य थे। बादमे 'तसलीम'के शिष्य हुए। इस युगकी शायरीके नमूने 'दागेजिगर'मे पाये जाते हैं। आपकी वर्त्तमान-ढगकी शायरीका दौर 'असगर' गोण्डवीके प्रभावमे आनेसे हुआ। 'असगर'की सगतके कारण आपके जीवनमें बहुत बडा परिवर्तन हुआ। पहले आपके यहाँ हल्के और आम कलामकी भरमार थी। अब आपके कलाममें गम्भीरता, उच्चता और स्थायित्व आ गया है। आप गज़लगो शायरोमें बहुत बडा मर्त्तबा रखते हैं। नित नये अनुभवोका आप गजलमे समावेश कर रहे हैं। जिससे गज़लमे एक ताज़गी, स्फूर्ति और नवीनता बढती जा रही है। मजाज़ी इश्कके साथ-साथ हकीकी इश्कका पुट देकर तगज्जुल और तसव्वुफका समन्वय करनेमे कमाल करते है। आपके पढनेका ढग

इतना दिलकश और मोहक है कि सैकडो शायर उसकी कॉपी करनेका प्रयत्न करते है, मगर वोह बात कहॉ ? जिगर, जिगर है।

पहले आप मशहूर रिन्द थे। मुशायरोमे भी पीकर और बेखुद होकर बैठते थे। यहॉतक कि १९२८ ई०मे बिजनौर नुमाइशके मुशायरेमे हमने उन्हे मुशायरेमे ही पीते हुए देखा है। मगर अब अर्सेसे तौबा किये हुए है। बहुत-से मुशायरोमे आपका कलाम हमे सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

जिगरकी शायरी

इश्कको दिलफेक छोकरे मनबहलावका एक साधन समझते है। जब जी चाहा किया, जब जी न चाहा, छोड दिया। यह इश्क नही, लुचपन है, ऐय्याशी है। इश्ककी परिभाषा 'जिगर'से सुनिये—

यह इश्क नही आसॉ, इतना ही समझ लीजे।
इक आगका दरिया है, और डूबके जाना है॥

'जिगर'की प्रेयसी हरजाई या बाजारी नारी नही। वह हयापरवर, सुशीला कुलीन सुकुमारी है। न जाने उसके हृदयमे प्रेमकी चिनगारी कैसे जा लगी है? वह अन्दर-ही-अन्दर सुलगती जा रही है, परन्तु उसका धुऑ बाहर नही निकलने देना चाहती। एक भी आह ओठोसे बाहर निकली तो जग हँसाई होगी। कुटुम्बी क्या कहेगे? इसी भयसे वह मन-ही-मनमे सुलगती जा रही है। सामाजिक और पारिवारिक बन्धन इतने है कि वह एक पाती भी अपने प्यारेको नही भेज सकती, न किसीके हाथ सन्देशा। जिगर अपनी प्रेयसीकी विवशतासे परिचित है। वे अन्य शायरोकी तरह शिकवा-ओ-शिकायत, नाला-ओ-फुगॉं नही करते; यही कहकर दिलको बहलानेका यत्न करते है—

इधरसे भी है सिवा, कुछ उधरकी मजबूरी।
कि हमने आह तो की, उनसे आह भी न हुई॥

ऐसे हयापरवर माशूकका तसव्वुर उर्दूगजलमे 'जिगर'की जिगर-सोजीसे पहले-पहल आया है।

कुछ शायरोका सिद्धान्त है कि—

जो गम हुआ उसे गमे-जानाँ बना लिया

यानी साँसारिक आपदाये किसी भी कारणसे आये। वे सब इश्कके कारण आई, यही समझकर उसका उल्लेख गजलमें करते है। लेकिन आजका शायर गमेदौराँको गमेजानाँ न बनाकर, गमेजानाँको गमेदौराँ बनानेके पक्षमे है।

हमपर अकेले ही यह मुसीबतोका पहाड नही टूट रहा है, अपितु समस्त मानव समाज इसके नीचे पडा हुआ कराह रहा है। उन सबका दुख दूर होनेमे ही अपना कल्याण है। यही भावना 'गमेदौराँ' है।

राष्ट्रपिता बापूपर जो अमानुषिक अत्याचार दक्षिण अफ्रीकामे गोरो द्वारा हुए, बापूने उन्हे व्यक्तिगत न समझकर समस्त अश्वेत जातिका अपमान समझा। इसी समझको 'गमेदौराँ' कहते है।

एक अबला भरी जवानीमे विधवा हो जाती है। वह बिलख-बिलख कर रोनेके बजाय, यह समझकर कि यह आपदा केवल उसीपर नही आई है, न जाने कितनी नारियाँ इस दुखमे बिलख रही है, उनके उद्धारके लिए आश्रमो और शिक्षालयोका प्रबन्ध करनेमे जुट जाती है। घर-घर जाकर विधवाओंको सान्त्वना देती है। इसी कार्यको 'गमेदौराँ' कहते है।

यदि किसी पुत्रवती माँका इकलौता लाल देशहितमे शहीद हो जाता है, और उसकी माँ अपनेको निपूती न समझकर, समूचे देशकी माँ समझ लेती है। उसी समझको 'गमेदौराँ' कहते है। 'जिगर' इसी 'गमेदौराँ'-के कायल हैं—

मैं वोह साफ ही न कह दूँ, जो है फ़र्क मुझमें, तुझमें।
तेरा दर्द, दर्दे-तनहा, मेरा गम गमे-ज़माना॥

'जिगर'का मानवीय-प्रेम धीरे-धीरे ईश्वरीय-प्रेममे परिवर्तित हो जाता है, और वे सर्वत्र उसका जलवा देखते है—

जिस रंगमे देखा उसे, वह परदानशी है।
और उसपै यह परदा है कि परदा ही नही है॥
हर एक मकॉमे कोई इस तरह मुकीं है।
पूछो तो कही भी नही, देखो*तो यहीं है॥

बाहरकी ऑखे बन्दकर जब उसे हियेकी ऑखोसे देखा तो—

मुझीमे रहे मुझसे मस्तूर होकर।
बहुत पास निकले बहुत दूर होकर॥

अपना प्यारा सर्वत्र अपने साथ है, परन्तु अपनी अन्धी ऑखे उसे न देख सके, तो उसका क्या दोष ? जिसने जब भी उसे टेरा, अपने समीप पाया—

इस तरह न होगा कोई आशिक भी तो पाबन्द।
आवाज़ जहॉ दो उसे वोह शोख़ वही है॥

साथ ही नही है, वह रोम-रोममे व्याप्त है—

ऑखोमें नूर, जिस्ममे बनकर वोह जॉ रहे।
यानी हमीमें रहके, वोह हमसे निहॉ रहे॥

और जो मुसीबते हमपर आई, वोह हमारे साथ हमारे प्यारेने भी बर्दाश्त की। आये हुए दु खको जब अपने साथी बॉट लेते है, समवेदना प्रकट करते है, तो दु खका बोझ बहुत हलका लगने लगता है—

हरचन्द बर्क़े-फ़श-म-फ़शे-दो जहॉं रहे।
तुम भी हमारे साथ रहे, हम जहॉं रहे॥

हमारा प्यारा हररूपमे जलवागर है, हियेकी आँखोसे देखो तो भूखोकी भूख-प्यासमे, सतियोके आँसुओमे, पीडितोकी आहोमे, पक्षियोके चहकनेमे, वही दिखाई देगा—

बहारे-लाला-ओ-गुल, शोख़िये-बर्कों-शरर होकर ।
वोह आये सामने लेकिन, हिजाबाते-नज़र होकर ।।

अपने प्यारेका जलवा कैसे व्यक्त किया जाय ? जिन आँखोने उसे देखा है, वे बोलना नही जानती, और जीभ कहे तो क्या कहे ? उसने कुछ देखा नही—

क्या हुस्नका अफसाना महदूद हो लफ़्ज़ोमें ।
आँखें ही कहे उसको, आँखोने जो देखा है ।।*

वाहरे मेरे प्यारेका मेरे प्रति अनुराग ! न वोह काबेमे रहा, न मन्दिरमे, न धनियोके महलोमे । वह तो मेरे इस उजडे दिलमे ही बना रहा—

जो न काबेमे है महदूद न बुतख़ानेमे ।
हाय वोह और एक उजड़े हुए काशानेमें ।।

मै तो उसीके हुस्नका आशिक हूँ । मुझे तो सर्वत्र उसीका हुस्न-ही-हुस्न नज़र आ रहा है, और कुछ भी नही—

हुस्न है मेरे सामने, हुस्नके मासिवा नही ।
इश्कमे मुब्तिला हूँ मै, कुफ़्रमे मुब्तिला नही ।।

परमात्माकी एक झलक देखनेकी साध लिये हुए न जाने कितने साधकोने साधनाएँ की । कुछ और आगे वढे तो परमात्माके चरणोकी समीपता प्राप्त करनेकी अभिलाषामे दुर्धर तप करते रहे । अधिक-से-अधिक ईश्वरमे एकाकार होनेके प्रयत्न किये, परन्तु परमात्मा कोई पृथक

---

*गिरा अनयन, नयन बिन बानी—तुलसीदास

शक्ति नही। वीतराग होनेपर यह आत्मा ही परमात्मा हो सकता है। कुछ इसी सिद्धान्तसे मिलता-जुलता अभिप्राय जिगर इस तरह व्यक्त करते है—

'यहाँतक जज़्ब कर लूँ काश तेरे हुस्ने-कामिलको।
तुझीको सब पुकार उट्ठें निकल जाऊँ जिधर होकर॥

प्रेमी और प्यारा जब एकाकार हो जाये, तब विरह-मिलनके दु खोका समूल नाश हो जाता है। गुण, गुणी, ज्ञाता, ध्यान, ध्येय, ध्याता, तू, मैं, परका तब भेद-भाव नही रहता। मिस्रीसे मिठास जुदा नही, इसी तरह यह आत्मा वीतराग होकर परमात्म-पद प्राप्त कर लेता है, तब उपासक और उपास्यका भेद नही रहता—

वहदते-ख़ास इश्कमे गैरियतका ज़िक्र क्या?
अपने ही जलवे देखिये अपनी ही बज़्मेनाज़में॥

ईश्वर नामकी कोई वस्तु ससारमे है और उसीने यदि यह सृष्टि की है तो न जाने वह अपने भक्तोको मिटानेपर क्यो तुला हुआ है? इस बेरहमीसे तो बच्चा भी अपने खिलौने नही तोडता। जब भक्त ही न होगे तो भक्त-वत्सलको कौन पूछेगा? सृष्टि ही न रहेगी तो उसे सृष्टि - कर्ता कौन कहेगा?

मुझे ख़ाकमें तो न यूँ मिला, हूँ अगर्चे मै तेरा नक़्शे-पा।
तेरे जलवे-जलवेकी है बक़ा, मेरे शौके-नाम-व-नामसे'॥

'इसी भावको इकबालने यूँ व्यक्त किया है—

इसी कोकबकी ताबानीसे है तेरा जहाँ रोशन।
ज़वाले-आदमे-ख़ाकी ज़ियाँ तेरा है या मेरा?

(इन्ही मानव-रूपी चमकते नक्षत्रोसे तेरा ससार जगमग-जगमग हो रहा है। यदि इनको तू नष्ट कर देगा तो नुकसान तेरा होगा या अन्य किसीका?)

'जिगर' रोने-बिसूरनेको शायाने-शान नही समझते—

इश्ककी अजमत न हरगिज़ जीते जी कम कीजिये ।
जान दे दीजे मगर, आँखे न पुरनम कीजिये ।।

तौहीने-इश्क देख न हो, ऐ 'जिगर' ! न हो ।
हो जाये दिलका ख़ून, मगर आँख तर न हो ।।

और कभी आहो-नाला मुँहसे निकले भी तो—

नाला यूँ कीजे, यह अन्दाज़े-शिकेबाई[1] हो ।
जैसे बेसाख़्ता[2] होटोपै हँसी आई हो ।।

गमे-इश्कमे ओठोपर मुसकान न आये, तो 'जिगर' ऐसे इश्कको इश्क और जिन्दगीको जिन्दगी नही समझते—

तेरी ख़ुशीसे अगर गममें भी ख़ुशी न हुई ।
वोह जिन्दगी तो मुहब्बतकी जिन्दगी न हुई ।।

'जिगर' अपने प्यारे द्वारा दिये गये कष्टोको कष्ट नही समझते। वल्कि उसका अहसान समझकर आभारी होते हैं—

तेरी अमानतेगमका तो, हक़ अदा कर लूँ ।
ख़ुदा करे शबे-फ़ुरकत अभी दराज़ रहे ।।
तेरे निसार अताकरदा एक लतीफ़ ख़लिश ।
तमाम उम्र मुहब्बतको जिसपै नाज़ रहे ।।

अब ज़बाँ भी दे अदाये-शुक्रके काबिल मुझे ।
दर्द बख़्शा है अगर तूने बजाये-दिल मुझे ।।

---

[1]सन्तोष और सब्रका अन्दाज़ मालूम दे, [2]अनायास, यकायक ।

मनुष्यकी वह स्थिति कितनी शोचनीय है, जब कि कोई उसे दयनीय समझकर जुल्मो-सितमसे हाथ खीच ले। युद्धमे रत एक योद्धा यह समझकर हथियार फेक दे कि विपक्षी योद्धा अशक्त हो चला है, प्रतिद्वन्द्वी योद्धाके लिए घोर लज्जाकी बात होगी।

फूँक दे ऐ गैरते-सोज़े-मुहब्बत फूँक दे।
अब समझती है वोह नज़रे, रहमके काबिल मुझे॥

'जिगर'के यहाँ भी रकीबका जिक्र आता है, मगर कितनी महानताके साथ?

वोह हज़ार दुश्मने-जाँ सही, मुझे फिर भी गैर अज़ीज़ है।
जिसे ख़ाके-पा तेरी छू गई, वोह बुरा भी हो तो, बुरा नही[1]॥

'जिगर' एक जमानेमे बहुत बडे रिन्द रहे है। ऐसे कि इमामे-मैख़ाना कहलानेके पूर्ण अधिकारी। अपनी रिन्दीके बारेमे फरमाते है—

रिन्द जो मुझको समझते है उन्हे होश नही।
मैकदा-साज़ हूँ मैं मैकदाबरदोश नही॥
पाँव रुकते ही नही मंज़िले-जानाँके ख़िलाफ।
और अगर होशकी पूछो तो मुझे होश नही॥

'जिगर'को दर्से-हकीकत बहुत न दे वाइज़!
वोह बेख़बर है बज़ाहिर तो बाख़बर पिन्हाँ॥

---

[1]रकीबके सम्बधमे किसी अज्ञात कविका यह शेर 'जिगर' को हमने झूम-झूम कर पढते सुना है और उनकी रायमे उर्दू शायरीमे इससे अच्छा शेर रकीब पर नही लिखा गया।

सामने उसके न कहते मगर अब कहते है।
लज्जते-इश्क गई ग़ैरके मर जानेसे॥

जबतक शबाबेइश्क, मुकम्मिल शबाब है।
पानी भी है शराब, हवा भी शराब है॥

तूने जिस अश्कपर नजर डाली।
जोश खाकर वही शराब हुआ॥

'जिगर' पतनोन्मुखी कौमको देखिये किस अन्दाजमे गैरत दिलाते हैं—

जो साज़ कि खुद नग़मये-हिरमॉ था उसीको।
अन्देशये-मिज़राब है मालूम नही क्यो?
उसी किश्तीको नही ताबेतलातुम सदहैफ़।
जिसने मुँह फेर दिये थे कभी तूफानोके॥

सुख-दुखका जोडा है। जब सुख भोगते रहे तो दुखसे घबराहट क्यो?

कॉटोका भी कुछ हक है आखिर।
कौन छुड़ाये अपना दामन॥

अब हम आपके 'शोलयेतूर' दीवानसे और पत्र-पत्रिकाओसे सभी तरहका कलाम चुनकर दे रहे हैं—

बैठे है बज्मेदोस्तमें[1] गुमशुदगाने-हुस्ने-दोस्त[2]।
इश्क है और तलब[3] नही, नग्मा[4] है और सदा[5] नही॥

अरबाबे-चमनसे[6] नही, पूछो यह चमनसे।
कहते है किसे निकहते-बरबादका[7] आलम॥

---

[1]प्यारेकी महफिलमे, [2]प्यारेके रूपमे लीन गुम-सुम, [3]इच्छा; [4]गीत लहरी, [5]आवाज, [6]चमनवालोंसे, [7]बरबादीकी गन्धका।

हरइक सूरत, हरइक तसवीर मुबहिम[1] होती जाती है।
इलाही ! क्या मेरी दीवानगी कम होती जाती है ?

तेरे बगैर तो जीना रवा नही लेकिन।
मै क्या करूँ जो तेरा गम ही जॉनवाज[2] रहे॥

इश्क ही के हाथोमे कुछ सकत[3] नही रहती।
वरना चीज ही क्या है गोशये-नकाब उनका॥

ऑखोका था कुसूर न दिलका कुसूर था।
आया जो मेरे सामने मेरा गरूर था॥

किसी सूरत नमूदे-सोजे-पिनहानी[4] नही जाती।
बुझा जाता है दिल, चेहरेकी ताबानी[5] नही जाती॥

मुहब्बतमें इक ऐसा वक्त भी दिलपर गुजरता है।
कि ऑसू खुश्क हो जाते है, तुगयानी[6] नही जाती॥

जिसे रौनक तेरे कदमोने देकर छीन ली रौनक।
वोह लाख आबाद हो उस घरकी वीरानी नही जाती॥
वोह यूं दिलसे गुजरते है कि आहट तक नहीं होती।
वोह यूँ आवाज देते है, कि पहचानी नही जाती॥

वोह लाख सामने हो मगर इसका क्या इलाज ?
दिल मानता नही कि नजर कामयाव है॥

---

[1]धुधली; [2]जानके साथ, [3]शक्ति, [4]अन्तरग व्यथाका अस्तित्व; [5]चमक; [6]तूफान।

उन्हीके दिलसे कोई इसकी अजमतें पूछे ।
वोह एक दिल जिसे सब कुछ लुटाके लूट लिया ।।

और तो कुछ कमी नही आपके इक्तदारमे[1] ।
आप मुझे भुला सकें यह नही अख्तयारमे ।।

फित्नये-रोजगारमे[2] अमन[3] है क्या, करार[4] क्या ?
हासिले-ज़ीस्त[5] गम सही, गमका भी ऐतबार क्या ?

क्यो आतिशेगुल मेरे नशेमनको जलाये ?
तिनकोमें है खुद बर्केचमनजादका आलम ।।

उन लबोकी जाँनवाजी देखना ।
मुँहसे बोल उठनेको है जामे-शराब ।।

दिलको बरबाद करके बैठा हूँ ।
कुछ खुशी भी है कुछ मलाल भी है ।।

आ कि तुझ बिन इस तरह ऐ दोस्त ! घबराता हूँ मै ।
जैसे हर शैमे किसी शैकी कमी पाता हूँ मै ।।
कूए-जानाँ की हवातकसे भी थर्राता हूँ मै ।
क्या करूँ बेअख्तयाराना चला जाता हूँ मै ।।
मेरी हस्ती शौकेपैहम, मेरी फितरत इज्तराब ।
कोई मंजिल हो मगर गुजरा चला जाता हूँ मै ।।

उनके बहलाये भी न बहला दिल ।
रायगाँ[6] सईए-इल्तफात[7] गई ।।

---

[1]अधिकारमे, [2]ससारके झमेलोमे; [3]सुख-शान्ति; [4]चैन; [5]जिन्दगीका हासिल, [6]व्यर्थ, [7]कृपा पानेकी युक्ति ।

तर्के-उल्फत बहुत बजा नासेह !
लेकिन उसतक अगर यह बात गई ?

सीनये-नैं[1] जो गुजरती है।
वोह लबे-नै-नवाज़[2] क्या जाने ?

इबरते-बन्दगी-ओ-नाचारी[3] ।
कोई बन्दानवाज़[4] क्या जाने ?

इस इश्ककी तलाफ़िये-माफ़ात[5] देखना।
रोनेको हसरतें हैं, जब आँसू नहीं रहे ।।

हम न मरते तेरे तग़ाफ़ुलसे[6] ।
पुरसिशे-बे-हिसाबने[7]-मारा ।।

हाय यह मजबूरियाँ, महरूमियाँ, नाकामियाँ ।
इश्क आखिर इश्क है, तुम क्या करो, हम क्या करें ?

किस तरफ जाऊँ, किधर देखूँ, किसे आवाज़ दूँ ?
ऐ हुजूमे-नामुरादी जी बहुत घबराय है ।।

हमसे पूछो तो इश्ककी भी निगाह ।
सख्त काफिर निगाह होती है ।।
वोह भी है इक मुकामेइश्क जहाँ ।
हर तमन्ना गुनाह होती है ।।

---

[1]बाँसुरीके मनपर; [2]स्वर खींचनेवालेके ओठ । [3]उपासना और उसे न कर सकनेकी मजबूरियाँ; [4]खुदा, माशूक, [5]प्रायश्चितकी मरी हुई भावनायें, [6]उपेक्षासे; [7]अधिक पूछताछने ।

इलाही ! तर्केमुहब्बत भी क्या मुहब्बत है।
भुलाते है उन्हे वोह याद आये जाते है।

मै तेरा अक्स हूँ कि तू मेरा।
इस सवालो-जवाबने मारा।।

देखा गया न यह भी सैयादो-बागवॉसे।
इक शाखेगुल थी लिपटी एक शाखे-आशियॉसे।।

ज़मानेके हमदोशो[1] हमराज़[2] कबतक ?
ज़मानेको पीछे हटाता चला आ।।

सावनकी रैन अँधेरी, तनहाइयोका आलम।
भूले हुए फसाने सब याद आ रहे है।।

शौकने बेख़ुदीमे जब दस्तेतलब[3] बढा दिया।
ग़ैरते-इश्कने वही पहलू-ए-दिल दबा दिया।।

इश्क फ़नाका नाम है इश्कमें ज़िन्दगी न देख।
जलवये-आफताब बन, ज़र्रेमें रोशनी न देख।।
होके रहेगा हमनवा वोह भी तेरे ही साथ-साथ।
नग़मयेशौक गाये जा इश्ककी बरहमी न देख।।

सोज़े-तमाम चाहिए, रंगे-दवाम चाहिए।
शमअ् तहेमज़ार हो शमअ् सरेमज़ार क्या ?

भूल जाऊँ कि मेरा ज़ौकेमुहब्बत क्या है ?
इस तरह तो न मेरी हौसला अफ़ज़ाई हो।।

---

[1]कन्धे-व-कन्धे; [2]साथ-साथ, [3]इच्छाका हाथ।

उनके जाते ही यह हैरत छा गई।
जिस तरफ देखा किया, देखा किया॥

वोह उनकी बेरुख़ी, वोह बेनियाज़ाना हँसी अपनी।
फिरी महफ़िल थी लेकिन बात बिगड़ी बन गई अपनी॥

फूल वही, चमन वही, फ़र्क़ नज़र-नज़रका है।
अहदे बहारमें था क्या? दौरेख़िज़ाँमे क्या नहीं॥

रह गया है अब तो बस इतना ही रब्त इक शोख़से।
सामना जिस वक़्त हो जाता है, भर आता है दिल॥

जब मिली आँख होश खो बैठे।
कितने हाज़िर जवाब हैं हम लोग॥

अल्लाह तुझे रक्खे महफ़ूज़[1] हवादससे[2]।
ऐ कुफ़्र! तेरे दमतक आराइशे-ईमाँ[3] है॥

पीता बग़ैर अज़्न[4] यह कब थी मेरी मजाल।
दर-परदा चश्मेयारकी शह पाके पी गया॥

किधरसे बर्क़ चमकती है देखें ऐ वाइज़!
मैं अपना सागर उठाता हूँ, तू किताब उठा॥

बहार तौबा-शिकन, चश्मे-मस्तेयार मुसिर।
मैं आज पी जो न लेता वह बदगुमाँ होता॥

हमसे नज़र फेर ली उस शोख़ने।
हम भी हैं इन्सान ख़फा हो गये॥

---

[1]सुरक्षित; [2]आपदाओसे; [3]ईमानकी शोभा, [4]निमन्त्रण।

इश्क ही तनहा नही आशुफ्ता सर मेरे लिए।
हुस्न भी बेताब है और किस कदर मेरे लिए॥

अब नज़रको कहीं करार नही।
काविशे-इन्तख़ावने मारा॥

ज़र्रोंसे बाते करते हैं दीवारोदरसे हम।
मायूस किस कदर है, तेरी रहगुज़रसे हम॥
कोई हसी हसी ही ठहरता नही 'जिगर'!
बाज़ आये इस बुलन्दिये-ज़ौके-नजरसे हम॥
इतनी-सी बातपर है बस इक जगेज़रगरी।
पहले उधरसे बढ़ते हैं वोह या इधरसे हम॥

मुमकिन नहीं कि जज्बयेदिल कारगर न हो।
यह और बात है तुम्हे अबतक ख़बर न हो॥

जिसे मैं भी ख़ुद न बता सकूँ, मेरा राजेदिल है वोह राजेदिल।
जिसे गैर दोस्त समझ सके, मेरे साज़मे वोह सदा नही॥

अज-शौकपर मेरी पहले कुछ अताब उनका।
ख़ास इक अदाके साथ, उफ वोह फिर हिजाब उनका॥

यह आलम है अब ख़ुश्क आँखोमें अपनी।
कि तूफाँ है बरपा रवानी नही है॥

हद्दे-कूचये-महबूब है वहींसे शुरू।
जहाँसे पड़ने लगे पाँव डगमगाये हुए॥

लेके ख़त उनका किया ज़ब्त बहुत कुछ लेकिन।
थरथराते हुए हाथोने भरम खोल दिया॥

मिलाके आँख न महरूमे-नाज रहने दे।
तुझे क़सम जो मुझे पाकबाज रहने दे ॥

खता मुआफ किसी औरका तो जिक्र ही क्या ?
नियाजमन्द तेरे तुझसे बेनियाज रहे ॥

मानूसे-ऐतबारे-करम क्यों किया मुझे ?
अब हर खतायेशौक उसीका जवाब है ॥

जो मसर्रतोसे खलिश नही, जो अजीयतोमे मजा नही।
तेरे हुस्नका भी कुसूर है, मेरे इश्क ही की खता नही ॥
मेरा जौक भी, मेरा शौक भी, है बलन्द सतहे-अवामसे।
तेरा हिज्र भी, तेरा वस्ल भी, मेरे दर्देदिलकी दवा नही ॥

चुप है वोह यूँ सुनके मेरी अर्जेशौक।
जैसे कि सचमुच ही खफा हो गये ॥

खबर नही मुझे, मै क्या हूँ, आरजू क्या है ?
किसीने जबसे यह समझा दिया कि तू क्या है ॥

कूचये-इश्कमें निकल आया।
जिसको खाना-खराब होना था ॥

लाखोमें इन्तखाबके क़ाबिल बना दिया।
जिस दिलको तुमने देख लिया दिल बना दिया ॥

माना ग़रूरे-इश्क भी इक चीज है मगर।
इतने भी दूर-दूर तेरे आस्ताँसे क्या ?

उनकी वोह आमद-आमद अपना यहाँ यह आलम।
इक रग आ रहा है, इक रंग जा रहा है ॥

वोह कबके आये भी और गये भी, नज़रमें अबतक समा रहे हैं।
यह चल रहे हैं, वह फिर रहे हैं, यह आ रहे हैं, वह जा रहे हैं॥
वही कयामत है कद्देबाला, वही है सूरत, वही सरापा।
लबोंको जुम्बिश, निगहको लरजिश, खड़े हैं और मुसकरा रहे हैं॥

हुस्न आया था खुद मनानेको।
सो तवज्जह ही इश्कने कम की॥

मुझे क्या पड़ी है तेरे दरसे उट्ठूँ।
ठहरने जो दे इज़्तराबे-मुहब्बत॥

यह क्या है कि पहलूमें वोह भी हैं लेकिन—
शबे-माह फिर भी सुहानी नहीं है॥

अजब इन्कलाबे ज़माना है, मेरा मुख्तसर-सा फसाना है।
यही अब जो बार है दोशपर यही सर था ज़ानू-ए-यारपर॥

हश्रके दिन वोह गुनहगार न बख्शा जाये।
जिसने देखा तेरी आँखोंका पशेमाँ होना॥

दिलको क्या-क्या सकून होता है।
जब कोई आसरा नहीं होता॥

उमीदे-उफ़ूको[1] भी मैंने अब दिलसे मिटा डाला।
यह था इक बदनुमा धब्बा मेरे दामाने-इसयाँका[2]॥

चाँदनी है, हवा है, क्या कहिये।
मुफलिसी क्या बला है, क्या कहिये॥

---

[1]हश्रमें अपराध क्षमा किये जानेकी आशाको, [2]पाप-रूपी चादरका।

फिर वह हमसे ख़फ़ा है क्या कहिये ?
जिन्दगी बेहया है, क्या कहिये ।।

अपना जमाना आप बनाते हैं अहले दिल ।
हम वोह नही कि जिसको जमाना बना गया ।।

मुझ नातवाने-इश्कको[1] समझा है तुमने क्या ?
दामन पकड़ लिया तो छुड़ाया न जायगा ।।

हरमो-दैरमें रिन्दोंका ठिकाना ही न था ।
वोह तो यह कहिए अमाँ[2] मिल गई मयखानेमें ।।

वोह भी निकली इक शुआए-बर्क़े-हुस्न[3] ।
मैं जिसे अपनी नजर समझा किया ।।

नवीदे-बख़्शिशे-इसयाँसे[4] शर्मसार न कर ।
गुनाहगारको या रब ! गुनाहगार न कर ।।

नाज करती है ख़ाना वीरानी ।
ऐसे ख़ाना ख़राब है हम लोग ।।

उससे भी शोख़तर हैं उस शोख़की अदायें ।
कर जाये काम अपना लेकिन नजर न आयें ।।

जुनूने-मुहब्बत यहाँतक तो पहुँचा ।
कि तर्के-मुहब्बत किया चाहता हूँ ।।

हुस्नकी सहरकारियाँ[5] इश्कके दिलसे पूछिये ।
वस्ल कभी है हिज्र-सा, हिज्र कभी विसाल-सा ।।

---

[1]निर्बल प्रेमीको, [2]शरण; [3]हुस्नरूपी बिजलीकी किरण; [4]अपराधोंको क्षमा किये जानेकी सूचनासे, [5]जादूगरी ।

हुस्नकी शानें थी जितनी, सब नुमायाँ हो गईं।
जो तेरे रुख़से बचीं रंगे गुलिस्ताँ हो गईं॥

—निगार जनवरी १९४१ ई०

मेरी हैरतकी कसम आप उठायें तो नकाब।
मेरा जिम्मा है कि जलवे न परीशाँ होंगे॥

मेरा जो हाल हो-सो-हो बर्क़ेनजर गिराये जा।
मैं यूँ ही नालाकश रहूँ तू यूँ ही मुसकराये जा॥

लहजा-ब-लहजा दम-ब-दम जलवा-ब-जलवा आये जा।
तिश्नये-हुस्नेजात हूँ, तिश्नालबी बढाये जा॥

लुत्फ़से हूँ कि महरसे, होगा कभी तो रूबरू।
उसका जहाँ पता चले, शोर वहीं मचाये जा॥

ख़ुशा वोह दर्देमुहब्बत, जहे वोह दिल कि जिसे।
जरा सुकून हुआ, गुद-गुदा दिया तूने॥

ख़ुशा वोह जान जिसे दी गई अमानते-इश्क।
ज़हे वोह दिल जिसे अपना बनाके लूट लिया॥
सलाम उसपै कि जिसने उठाके परदये-दिल।
मुझीमे रहके मुझीमें समाके लूट लिया॥

मुझे चाहिए वही साकिया जो छलक चले, जो बरस चले।
तेरे हुस्ने-शीशा-बदस्तसे, तेरी चश्मे-बादा-बजामसे॥

तुम्हे भी ख़बर है जो तुम कह गये हो?
ख़ुद अपनी अदाओसे मसहूर होकर॥

सुनता हूँ कि हर हालमें वोह दिलके क़रीं है।
जिस हालमें मैं हूँ मुझे अफ़सोस नहीं है।।
वाहरे शौके-शहादत, कूए-कातिलकी तरफ़।
गुनगुनाता, रक्स करता, झूमता जाता हूँ मैं।।
—अपनी डायरीसे

तेरी ख़ुशीसे अगर गममें भी ख़ुशी न मिली।
वोह ज़िन्दगी तो मुहब्बतकी ज़िन्दगी न हुई।।
सबा! यह उनसे हमारा पयाम कह देना।
गये हो जबसे यहाँ सुबहोशाम ही न हुई।।

दिल गया रौनके-हयात गई।
गम गया सारी कायनात गई।।

जबसे तू महरबान है प्यारे।
और दिल बदगुमान है प्यारे।।

तू जहाँ नाज़से कदम रख दे।
वोह जमीन आसमान है प्यारे।।

शामसे आ गये जो पीनेपर।
सुबहतक आफताब है हम लोग।।
तू हमारा जवाब है तनहा।
और तेरा जवाब है हम लोग।।
'आजकल' सितम्बर १९४९ ई०

तेरे जलवोको देखे और मेरे दिलकी तरफ देखें।
कहाँ है इत्तसाले[1]-मौजो-साहिल देखनेवाले ?

---

[1]लहरे और किनारेको मिला हुआ।

कहीं ऐसा तो नहो वोह भी कोई हो आज़ार ।
तुमको जिस चीज़पै राहतका गुमाँ होता है ॥

हाय ! वोह सिलसिलये-अश्क कि जो तेरे हुज़ूर ।
दिलमें रहता है न आँखोंमें रवाँ रहता है ॥

वोह अदाये-दिलबरी हो कि नवाए-आशिकाना ।
जो दिलोंको फतह कर ले, वही फातहेज़माना ॥
कभी हुस्नकी तबीयत न बदल सका ज़माना ।
वही नाज़े-बेनियाज़ी वही शाने-ख़ुसरवाना ॥
मैं हूँ उस मुकामपर अब कि फिराकोवस्ल कैसे ?
मेरा इश्क भी कहानी, तेरा हुस्न भी फसाना ॥
तेरे इश्ककी करामत यह अगर नहीं तो क्या है ?
कभी बेअदब न गुज़रा, मेरे पाससे ज़माना ॥
मेरे हमसफीर बुलबुल ! मेरा-तेरा साथ ही क्या ?
मैं ज़मीरे-दश्तोदरिया तू असीरे-आशियाना ॥
तुझे ऐ 'जिगर' ! हुआ क्या कि बहुत दिनोंसे प्यारे ।
न बयाने-इश्को-मस्ती न हदीसे-दिलबराना ॥

'आजकल' १५ अगस्त १९४९ ई०

कदम हटे जो कभी जादयेवफासे कहीं ।
हरेक ज़र्रा पुकारा कि देखता हूँ मैं ॥

इल्म ही ठहरा इल्मका बागी ।
अक़्ल ही निकली अक़्लकी दुश्मन ॥

'माहेनौ' करांची फरवरी १९५१ ई०

अज़मते-काबा मुसल्लिम, लेकिन इसका क्या इलाज ?
दिल ही जब कहता हो कि बुतखाना फिर बुतखाना है ॥

रिन्दोंने जो छेड़ा जाहिदको साक़ीने कहा किस तंज़से आज—
"औरोंको वोह अज़मत क्या जानें, कमज़र्फ़ जो इन्साँ होते हैं ॥"
यह खून जो है मज़लूमोंका, ज़ाया तो न जायेगा लेकिन—
कितने वोह मुबारक क़तरे हैं जो सर्फ़े-बहाराँ होते हैं ?

—'शायर' अक्तूबर १९५० ई०

वोह सब्ज़ानंगे-चमन है, जो लहलहा न सके ।
वोह गुल है ज़ख्मे-बहाराँ जो मुसकरा न सके ॥
घटे अगर तो बस इक मुश्तेख़ाक है इन्साँ ।
बढ़े तो वुसअ़ते-कौनैनमें समा न सके ॥

कभी शाखो-सब्ज़ा-ओ-बर्गपर कभी गुंचओ-गुलो-ख़ारपर ।
मैं चमनमें चाहे जहाँ रहूँ, मेरा हक़ है फस्ले-बहारपर ॥

२ जून १९५३ ई०]

अली अख़्तर 'अख़्तर'
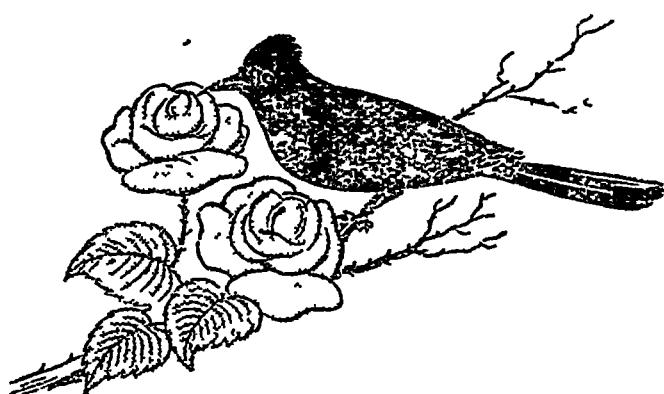
[१८९२ — ई०]

आप १८९२ ई०मे रामपुरमे उत्पन्न हुए, अलीगढके रहनेवाले है। १९१०-११ ई०से हैदराबादमें नौकरी कर रहे थे, और अब भारत-विभाजनके बाद करॉची चले गये है। अरबी-फारसीके अतिरिक्त अग्रेज़ीमें मैट्रिकुलेट है। घरेलू वातावरण शायरीमय था। अत. आप भी बचपनसे शेर कहने लगे।

१४-१५ वर्षकी उम्रमें आप ऐसा कलाम कहने लगे थे—

कफसमें समझे थे हम कि हालत रहीने-अमनो-अमाँ रहेगी।
किसे खबर थी कि बर्क़ अब भी निगाह-बर आशियाँ रहेगी॥

डूबी हुई पाता हूँ नब्ज़े-दिले-दीवाना।
हलकी-सी फिर इक जुम्बिश ऐ जलवये जानाना!

यहाँ आपके चन्द अशआर निगार जनवरी १९४१ से मुन्तखिब करके दिये जाते हैं—

कोई और तर्ज़े-सितम सोचिये।
दिल अब खूगरे-इम्तहाँ[1] हो गया॥

---

[1]परीक्षाका अभ्यस्त।

शेर-ओ-सुखन

मेरी मजलूम[1] चुपपर शादमानीका[2] गुमाँ क्यों हो।
कि नाउम्मीदियोके जख्मको बहना नही आता॥

तुझसे हयातो-मौतका[3] मसअला हल अगर न हो।
जहरे-गमे-हयात पी मौतका इन्तजार कर॥

कब हुई आपको तौफीके-करम[4]।
आह! जब ताकते-फरियाद नही॥

जहमते-इल्तफात[5] की, आपने आह! क्या किया?
अब वोह लताफते कहाँ हसरते-इन्तजारमे॥

करवटें लेती है फूलोंमें शराब।
हमसे इस फ़स्लमें तौबा होगी?

मेरी बलाको हो, जाती हुई बहारका गम।
बहुत लुटाई है ऐसी जवानियाँ मैंने॥
मुझीको परदये-हस्तीमें दे रहा है फरेब।
वोह हुस्न जिसको किया जलवा आफरीं मैंने॥

नही ऐ हमनफस! बेवजह मेरी गिरयासामानी।
नजर अब वाकिफे-राजे तबस्सुम होती जाती है॥

मेरी बेखुदी है उन आँखोका सदका।
छलकती है जिनसे शराबे-मुहब्बत॥
उलट जायें सब अक़्लोइरफाँकी बहसें।
उठा दूँ अभी गर नकाबे-मुहब्बत॥

१० फरवरी १९५२]

---

[1]अत्याचार-पीडित; [2]प्रसन्नताका; [3]जीवन-मृत्युका; [4]कृपाकरनेकी सामर्थ्य; [5]कृपाकरनेकी तकलीफ़ उठाई।

ज़फ़र मेह्दी 'रज़्म' अवधके एक कस्बे 'रदौली'मे करीब १६०० ई० मे उत्पन्न हुए। रदौली लखनऊ फैज़ाबादके दरम्यानमे पडता है। रज़्मकी इश्किया शायरीमे सौदर्यकी कोमल भावनाओके साथ-साथ प्रेमका एक बुलन्द तसव्वुर भी मिलता है। वे इश्कको बेकारोंके जी वहलावकी चीज़ नही समझते, बल्कि उसे जीवनके लिए अत्यत आवश्यक समझते हैं—

बेइश्क दर्दे-जीस्तका दरमॉ न हो सका।
इन्साँ बजाये खुद कभी इन्साँ न हो सका॥

हर चीज़पै छाया है अन्दाज़े-जुनूँ मेरा।
हर शयमें मुझे अपनी तसवीर नज़र आई॥

खुदा मालूम उन ज़र्रोमें कितने दिल धड़कते हैं।
ज़मींपर बसनेवाले कुछ समझते हैं ज़बाँ दिलकी॥

इश्कमें दरअस्ल जीना ही कमाले-ज़ौक है।
जिन्दगी मुश्किल है, मर जाना कोई मुश्किल नहीं॥

रंग बदला कियें ज़मानेके।
चन्द जुमले मेरे फसानेके॥
हो सके कब हरीफे-आज़ादी[1]।
दरो-दीवार कैदखानेके॥

अब कहाँ ले जाये किस्मत यह कनाअ़त देखकर।
देखिये क्या हो कफसके आशियाँ होनेके बाद॥

यह लालाज़ार मकतल[2], यह हवाये-दामने-कातिल[3]।
सकूं-सा[4] मिल रहा है, नींद-सी मालूम होती है॥

और होती जो कोई सूरते-इश्क।
क्यों गुनहगारे-ज़िंदगी होते॥

---

[1]स्वतन्त्रताके शत्रु, [2]रक्तवर्ण वधस्थल; [3]कातिलके दामनकी हवा; [4]चैन-सा।

मैं अपने ही जलवोंकी तावानियोंमें[1]।
तुझे देखकर गुम हुआ चाहता हूँ॥

वादा तेरा सच्चा है, मेरी जीस्तका[2] क्या ठीक ?
आ जल्द जमाना कहीं झूठा न बनादे ॥

ज़िंदगी इश्क और इश्क यकी।
मौत वहमो-गुमान है प्यारे॥

नज़ामें[3] गर्मिये-इनफास[4] है सरूर-अंगेज़[5]।
चले गये वोह मगर अब भी एक आलम है॥

यहं वेखुदीका है आलम कि एक कुर्ब तमाम[6]।
मैं बढ रहा हूँ कि नजदीक आ रहा है कोई॥

हरेक दर्दकी करवटपै उठ रहा है हिजाब।
हरेक साँसमें पैगाम पा रहा है कोई॥

जुर्मे-उल्फतका सहारा मिलते ही होश आ गया।
आलमे-असबाबमें खोया हुआ अब दिल नहीं॥

चमनमें आग लगा दी दिलोंको फूंक दिया।
मचलके और यह अब्रे-वहार क्या करते॥

मैं और क्या कहूँ उनकी जफाये-पैहमको[7]।
मेरी वफाका फकत हौसला वढाना था॥

---

[1]प्रकाशमे, [2]ज़िंदगीका। [3]मृत्युके वक्त, [4]स्वासकी गर्मी, [5]प्रफुल्लता देनेवाली, [6]समस्त मञ्जिल, [7]लगातार अत्याचारोंको।

मैं दलीले-ज़िंदगी समझूँ कि उम्मीदे-विसाल।
शमअ़ इक बुझती हुई-सी दिलके काशानेमें है॥

झलक यूँ यासमें[1] उम्मीदकी मालूम होती है।
कि जैसे दूरसे इक रोशनी मालूम होती है॥

मुबारक ज़िंदगीके वास्ते दुनियाको मर मिटना।
हमें तो मौतमें भी ज़िंदगी मालूम होती है॥

यही है सबाकी[2] जो निकहत-फ़रोशी[3]।
क़फ़स लेके अब मैं उड़ा चाहता हूँ॥

ऐ बादेसबा! छेड़ न ख़ाकस्तरे दिलको।
हर ज़र्रा कहीं फैलके सहरा न बना दे॥

तेरे शायाने-लुत्फ़े-दिल न सही।
हौसले तो हैं ग़म उठानेके॥

है मेरी नाचीज़ हस्ती बहरे[4]-नापैदा-कनार[5]।
मौत कहते हैं जिसे वोह ज़ीस्तका[6] साहिल[7] नहीं॥

हुस्ने-नज़रसे मैंने सँवारी जो कायनात[8]।
वोह कौन ख़ार[9] था कि गुलिस्ताँ न हो सका?

यह हौसला है कि बिजलीकी ज़दपै गुलशनमें।
ब-अहतमाम[10] नशेमन बना रहा है कोई॥

---

[1]निराशामें; [2]हवाकी, [3]सुगन्ध बेचना; [4]नदी; [5]जिसके किनारे नहीं; [6]जिन्दगीका; [7]किनारा; [8]दुनिया। [9]काँटा; [10]सावधानीपूर्वक, प्रयत्नसे।

तकमीले-इश्क कैदमें मजबूरियोंकी थी।
कैसी हँसी कि रोनेकी जुरअत न कर सके॥

मेरी मजबूरियोंका नाम रख लो दूसरी दुनिया।
यह कोई फ़ासला है जो कफ़ससे आशियाँ तक है॥

कफ़स ही आशियाँ है एक मुद्दतके असीरोंको।
कहाँ सर फोड़ने जायेंगे यह क़ैदी रिहा होकर॥

हर इक नफ़समें तड़प है हर इक नज़र बेबाक।
किसी ख़तरसे झिझकना शबाब क्या जाने?

रिहाई ऐतमादे-ज़ाती-ओ-तौफ़ीक़से पाई।
किया था क़ैद जिन हाथोंने वोह आज़ाद क्या करते॥

लुत्फ़े-आज़ादी कुजा रुक-रुकके उठते हैं कदम।
याद है वोह दिन अभी जब पाँवमें ज़ंजीर थी॥

फ़िक्रे-आज़ादीको ता-अहसास इमकाँ कीजिये।
दिलसे दिलतक बर्क़े-ख़ुद्दारीको जौलाँ कीजिये॥

दामने-गुलमें फ़रोज़ाँ कीजिये आतशकदा।
आगके शोलोंसे तरतीबे-गुलिस्ताँ कीजिये॥

यह सितम हाये मुसलसल, यह जफ़ाए-मुत्तसिल।
लाइये किसकी ज़बाँ जो शुक्रे-अहसाँ कीजिये।

हैरते-ग़म ता-कुजा[1], जब्ते-मुहब्बत ता-बके[2]।
'रज़्म' उठिये अब सकूने-ग़मको तूफ़ाँ कीजिये॥

---

[1]कहाँतक; [2]कबतक।

शेर-ओ-सुख़न

हम बेख़ुदी-ओ-होशकी हदसे गुजरके भी।
अन्दाजये-जमाले-हक़ीकत न कर सके॥

—निगार अक्तूबर १९४९ ई०

हबीब व महबूब

लिया और खुदकी निकाली हुई नहरमे गिरकर दम दे दिया। शीरीको फरहादकी मृत्युकी खबर मिली तो उसने भी जान दे दी।

आसमान—शायरोकी परम्परानुसार प्रेमियोको सतानेवाला। नित नये जुल्मो-सितम ढानेवाला।

उर्दू-शायरीमे बार-बार प्रयुक्त होनेवाले—इश्क, आशिक, माशूक, हबीब, महबूब, रकीब, उदू, कासिद, दरबान, मैखाना, पीरे-मुगाँ, रिन्द, साकी, जाहिद, नासेह, शेख, बरहमन, गुलो-बुलबुल, सैयाद, गुलची, बागबाँ, कफस, आशियाना, आदि पारिभाषिक शब्दोकी व्याख्या विस्तारके साथ शेरो-शायरी पृ० ७७-१४१मे दी जा चुकी है। यहाँ पुन उसके देनेकी आवश्यकता नही समझी गई।

शेर-ओ-सुख़न

चौथा भाग

[वर्त्तमान युगीन १५१ शायर-शायराओंका चुना हुआ काल

१९५४ ई० तककी गजलका इतिहास

प्राचीन और नवीन गजलगोई पर तुलनात्मक अध्ययन
हरजाई, बेवफा, जालिम माशूकके एवज
नेक और पाक हबीबका तसव्वुर, रोने-बिसूरनेकी
प्रथा बन्द, रंजोगमका मुसकानभरा स्वागत
निराशावादका अन्त

भाग्यसे अधिक पुरुषार्थपर विश्वास

भारत-विभाजन, स्वराज्य-प्राप्ति,
राष्ट्रपिताकी शहादत आदि
प्रेरणात्मक, लोकोपयोगी
सामयिक भावोका समावेश
मुशायरोका रोचक वर्णन

मूल्य तीन रुपया